लौटती लहरों की बाँसुरी

भारतभूषण अग्रवाल

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

एक

अशोक ने कुछ आश्चर्य से ही देखा कि उसके हाथ कांप रहे हैं।

'टू-थ्री-नाइन-फ़ाईव'— छः अंकों का नम्बर वह अभी पूरा मिला भी न पाया था कि उधर से 'एन्गेजड' की घंटी आने लगी।

न जाने क्या असमंजस था कि उसने टेलीफोन का चोगा उसके पालने पर रख दिया और सुस्ताने लगा।

और अपने इस सुस्ताने पर अशोक कुछ और भी ज्यादा आश्चर्य में पड गया। ऐसा कौन-सा श्रम किया है उसने ? फिर यह तनाव, यह घब-राहट, यह उद्वेग— इसका कारण ? टेलीफोन पर बात करना उसके लिए इतना सहज था कि वह उसके *स्वभाव का अंग बन चुका था*। फिर आज यह 'कॉल' मिलाते समय वह ऐसा अनुभव क्यों कर रहा है कि कोई बहुत बड़ा मोर्चा लेना हो ? उसे यह घबराहट क्यों हो रही है जो आज से बीस साल पहले इसी कलकत्ते में उसने तब अनुभव की थी, जब उसने जिन्दगी में पहली बार टेलीफोन का इस्तेमाल किया था।

उस दिन उसने 'साप्ताहिक देशसेवक' का सम्पादन-भार सम्भाला था, और पत्र के डाइरेक्टर खेमका जी के आदेशानुसार उन्हें फोन कर रहा था कि वह दफ्तर आ गया है। तब कलकत्ते में 'मैन्युअल एक्स्चेन्ज' था और आपरेटर को नम्बर देने तक उसे कोई तकलीफ नहीं हुई थी। हां, जब उधर से आवाज आई : 'मैं खेमका बोल रहा हूं', तभी न जाने उसे क्या हो गया था कि उसकी सारी देह कांपने लगी थी, आंखों के आगे अंधेरा छा गया था, और कानों में—कानों में मानो एक तूफान भर गया हो, मानो समुद्र की बेशुमार लहरें एक साथ गरजने लग गई हों। वह नहीं सुन सका था कि खेमका जी ने क्या कहा, और लाचार होकर वह बीच-बीच में सिर्फ 'हां-हां' करता रहा था। और तब जब उसकी लज्जा और ग्लानि का कोई ठिकाना न रहा था, जब दो-तीन दिन बाद खेमका जी से भेंट होने पर उसे

शिकायत सुननी पडी थी : 'उस दिन आप फिर डिनर पर नही आए। मैं इन्तज़ार करता रहा।'

अशोक पलक मारते समझ गया था कि उसने बदहवासी में डिनर के निमन्त्रण पर भी 'हा' कर दी थी। निपट अनुभवहीनता को छिपाने के लिए उसे कहना पडा था : 'मैं काफी ढूढता रहा, पर आपका घर ही नही पा सका। कलकत्ते मे अभी नया हू न, तिस पर यह 'एयर रेड प्रिकॉशन' का ब्लैकाउट !

अशोक ने सर को एक झटका देकर अपने को सचेत किया। उस घबराहट से भला इस घबराहट का क्या मेल ? तब वह नया था, निरा गवार, और अपने अफसर से बात कर रहा था। पर आज···आज तो उसके घर तक पर टेलीफोन लगा है, उसके बच्चे तक फोन पर धड़ल्ले से बातें करते हैं, और—अमिता उसकी अफसर नही है।

अमिता ! मन मे यह नाम आते ही उसके ओंठो पर एक मीठी मुस्कराहट फैल गई। जब-जब उसके मन मे यह नाम आता है, तब-तब ओठो पर, उसके रोम-रोम में, उसके एक-एक खयाल पर ऐसी ही मीठी मुस्कराहट फैल जाती है। मानो यह नाम कोई फूल हो—कभी न मुरझाने वाला फूल—जिसकी सुगन्ध उसके प्राणों मे बस जाती है; या किसी मीठे गीत की टेक हो जिससे उसकी ज़िन्दगी के गुम्बद गूज जाते है।

वीणा बोली : 'क्या सोच रहे हो ?'

अशोक चौंककर वर्तमान मे आ गया। उसने जाना कि वह महाजाति कॉलेज के दफ्तर मे बैठा है, कि वीणा उसकी बगल में बैठी है और वह अमिता को—श्रीमती अमिता मुकर्जी को—फोन करने आया है। वीणा के वाक्य ने उसे किसी जादू से फिर वही गजेटेड अफसर बना दिया है जो वह बरसो से है, और उसका वह नरवस रूप बुलबुले की तरह बिला गया है, जो बरसो पहले था और जिसका एक हल्का झोका उसको अभी-अभी छू गया था, अमिता से बात कर सकने की सम्भावना पर।

'टू-थ्री-नाइन-फाईव-सेविन टू', इस बार न तो अशोक के हाथ कापे,

न नम्बर ही 'एन्गेजड' निकला। अशोक दम साधे उधर से आवाज आने का इन्तजार करने लगा।

'यस प्लीज' : स्वर किसी नारी का था, पर उसमें निहित निरपेक्ष भाव से अशोक ने समझ लिया कि यह टेलीफोन-आपरेटर की आवाज़ है। ठीक भी है—इतना बड़ा दफ्तर है अमिता का—उसमे 'पी० बी० एक्स०' तो होगा ही।

उसने स्पष्ट शब्दों में कहा : 'मे आइ स्पीक टू मिसेज मुकर्जी प्लीज ?'

'वन मोमेण्ट', आपरेटर बोली।

अशोक ने अनुमान लगाया कि अब आपरेटर ने नम्बर मिला दिया है, और हां, यह घण्टी अमिता की मेज पर ही बज रही है। अभी अमिता फोन उठाएगी, और टेलीफोन के तार के सहारे उसका वह मीठा कण्ठ-स्वर उसके कानों तक तैर आएगा :

'मिसेज़ मुकर्जी स्पीकिंग !'

और अशोक के हाथ फिर कांपने लगे, उसके ओंठ फड़कने लगे।

और वह अपने दिमाग पर ज़ोर लगा रहा है, ठीक जैसे कोई तांगेवाला मुहज़ोर घोड़े को पीटता है, कि वह पहला वाक्य क्या कहेगा। वह जानता है कि कठिनाई असल में पहले वाक्य की ही है, फिर तो सवाद चालू हो जाएगा, और वह इतने नाटक लिखकर कम से कम इतना तो सीख ही गया है कि संवाद कैसे जारी रखा जाता है। पर, उसने अपने-आपको याद दिलाई, यह नाटक नही है, और पता नही अमिता अब क्या और कैसी हो गई है ! लेकिन उससे भी ज्यादा ज़रूरी तो यह है कि पहले—सबसे पहले—क्या कहा जाए। जल्दी सोचो, फौरन, वह फोन पर आने ही वाली है।

पर अशोक सिर्फ यही सोच पाया कि जल्दी सोचो। घोड़े के मुंह से निकलने वाले झाग की तरह उसके दिमाग की चिनगारियां छूटने लगी, पर कोई वाक्य हाथ न आया।

'जी, कहिए !'

अशोक झनझना उठा। यही है वह क्षण, वह चरम क्षण जिसकी प्रतीक्षा, जिसकी सम्भावना उसकी घबराहट बन गई थी। ऐसी घबराहट जो अपराधी को जज से होती है, या फिर जो मंजिल पर पहुंचने के समय प्रत्याशी को होती है! तो क्या, अशोक ने सोचा, मंज़िल आ गई? यह मंजिल है? पर, उसने आगे सोचा, यह सब तो बाद में सोचा जाएगा, अभी तो बोलो, कुछ बोलो, सोचना कैसा!

'मिसेज मुकर्जी हीअर!'

'अमिता, मैं अशोक बोल रहा हूं।'

अशोक को अपने ऊपर क्रोध आ गया। कितना समझाया है, फिर भी स्वर में यह कम्पन कैसा! उसके कानों में उसे अपनी ही आवाज बड़ी अजाब लगी है, किसी भिखारी की-सी, दुखियारे की-सी, रिरियाती गिडगिडाती। यह क्या बदतमीजी है, उसने अपने-आपको धमकाया, सीधी तरह बात करने में भी नानी मरती है!

पलक मारते अशोक का ध्यान दूसरी तरफ चला गया। लाइन अचानक 'डेड' कैसे हो गई? अमिता बोल क्यों नहीं रही है? क्या उसने फोन रख दिया है! क्या वह पहचान नहीं पाई है? भूल गई, क्या वह मुझे भूल गई!

और जैसे यंत्रवत् उसने दुहराया: 'मैं अशोक बोल रहा हूं!'

'बड़ी अच्छी बात है, बोलिए! लेकिन मैं नहीं बोलती!'

अशोक का कलेजा धक् से रह गया। उसने ऐसे सुना जैसे किसी और ने कहा: 'क्यों?'

'वह मैं फिर बताऊंगी। पहले आप यह बताइए हजरत कि आप तीन दिन तक कहाँ रहे? रोज चार-चार चक्कर लगाए हैं मैंने बालीगंज के, पर उन बेचारों को तो यह भी पता नहीं था कि आप आने वाले हैं। अब यह जो मैंने पेट्रोल फूंका है, यह कौन देगा?'

'सो तो मैं खुशी से दे दूंगा। पर अमिता, मैं सचमुच बहुत दुःखी हूं कि तुम्हें परेशानी हुई। बात यह थी कि इरादा तो बालीगंज में ही ठहरने का था, पर ऐन वक्त पर वीरेन्द्र का पत्र आया कि मेरे साथ ठहरो, इसलिए

यहां चला आया, महाजाति कालेज मे। तुम तो जानती ही हो, वीरेन्द्र मेरा बचपन का दोस्त है।'

'तो फिर मुझे चिट्ठी मे गलत पता क्यों दिया था ?'

'तुमको तो चिट्ठी पहले ही डाल चुका था !'

'ठीक है, पर क्या तार से सही सूचना नही दे सकते थे, या फिर यहा पहुंचते ही फोन नही कर सकते थे ?'

'भूल हो गई, माफी चाहता हूं।'

'माफी तो खैर, आपको बिना चाहे भी मिल जाएगी। पर सचमुच आप हद करते है। मै तो सोचती थी अब कुछ तो अक्ल आ ही गई होगी। पर देखती हू, बीस बरस बाद भी आप ज्यों के त्यों बने हुए हैं, कोई असर नहीं पड़ा।'

अशोक का मन सवेरे के समय किरण पाकर खुलते कमल की भांति खिला जा रहा था। अमिता के मीठे आत्मीय स्वर का प्रवाह उसे ऐसे सिक्त कर रहा था जैसे जगल में भटकते, थके-मादे बटोही को पहाड़ी झरने के दर्शन हो गए हों। दो क्षण पहले का संकोच और असमजस अब उसे बडा हास्यास्पद लग रहा था। उसने फूलते हुए कहा, 'पता नही, तुम्हारी इस बात में प्रशसा है या नही, पर मैं इसे प्रशसा ही मान रहा हू।'

'आपके साथ यही तो मुश्किल है कि आप जो मानना चाहते है उसे माने बिना नही मानते। खैर, छोडिए भी। यह बताइए प्रोग्राम क्या है ?'

'शाम की गाडी से जा रहा हू !'

'अच्छा, तो यह बात है ! तीन दिन तक हमे धोखे मे रखा, और अब याद भी आई तो अलविदा !'

'क्या करू अमिता ! दफ्तर के काम से आया था, बडा व्यस्त रहा। रोज चाहता था कि फोन करूं, पर दम मारने की भी फुरसत नही थी। आज जैसे-तैसे समय निकाल सका हू।

'हम कुछ नही जानते। यह सब नही चलेगा, आज आपका जाना नही हो सकता।'

'पर दफ्तर...।'

'ठीक है दफ्तर ! दफ्तर कोई आप अकेले का ही नही है। सभी के

दफ्तर है। यह पट्टी किसी और को पढ़ाइएगा। हां, वीणा कहां है ?'

'साथ ही है।'

'और बच्चे ?'

'वे भी आए है।'

'तो बस ठीक है। अभी तीन बजे है। मैं पांच बजे निकलूगी। मुकर्जी साहब तो आज देर से घर आएंगे, नही तो उन्ही को कह देती, आपको पिकअप कर लाते। हा, ये आपके वीरेन्द्र जी क्या कॉलेज मे ही रहते हैं ?'

'जी हां, कॉलेज कम्पाउण्ड में ही प्रोफेसर्स क्वार्टर्स है। वीरेन्द्र जी का नम्बर 17 है।'

'वस तो ठीक है। मै पाच बजे पहुच जाऊगी। खबरदार, जो कोई गडबडी की।'

फोन बन्द हो गया।

अशोक ने आहिस्ता से फोन का चोगा उसके पालने पर टिका दिया और कुर्सी की पीठ का सहारा लेकर चैन की एक सांस छोड़ी। अब तक वह तना बैठा था, मानो भाग जाना चाह रहा हो, पर किसी अज्ञात दबाव के कारण न जा पाता हो। अब वह ऐसे आराम से बैठ गया मानो सिनेमा हॉल की गद्देदार सीट पर बैठा हो, और सामने पर्दे पर रगीन फिल्म के सीन चल रहे हो।

तो, अमिता को चिट्ठी मिल गई।

क्यों, इसमे ऐसी क्या बात है ? चिट्ठी तो मिल ही जाती है। और तो और, उसे मिल तो वह चिट्ठी भी गई थी, जिसने एक बन्द तूफान को उभाड़ दिया था और उसकी जिन्दगी का एक सपना, बल्कि उसकी पूरी जिन्दगी ही ताश के घर की तरह लड़खडा कर गिर गई थी। हा, ठीक है। पर फिर भी आजकल डाक का क्या भरोसा ? और, उसे तो यह भी नही मालूम था कि उसके पास अमिता का जो पाच साल पुराना पता है वह बदला नही !

'हा, सचमुच उसे पता नही था, तभी तो उसने चिट्ठी भी कुछ अजीब तरह से ही शुरू की थी :

"अमिता,

कह नही सकता, यह पत्र तुम्हें मिलेगा भी या नही, क्योकि तुम्हारे घर का पता मुझसे खो गया है, और दफ्तर का जो पता मेरे पास है वह पाच साल पुराना है। हो सकता है, इस बीच तुम्हारा दफ्तर ही बदल गया हो, या तुमने कहीं और काम ले लिया हो। फिर भी, मैं चाहता बहुत हूं कि यह पत्र तुम्हे मिले, क्योंकि मैं इसी रविवार को कलकत्ते पहुंच रहा हूं, दफ्तर के काम से, और तीन दिन रहूगा। बालीगंज में ठहरने का विचार है। पता है . श्री रविशकर गुप्त, 207, रासबिहारी एवेन्यू ! वीणा भी साथ होगी, और बच्चे भी। (कविता-10 वर्ष, सजय-5 वर्ष)। यदि भेंट हो सकी तो सौभाग्य समझूगा। पिछले वर्ष भी कलकत्ते गया था एक दिन को, और तुम्हे फोन पर पाने की कोशिश भी की थी, पर दुर्भाग्य से तुमसे बात न हो सकी।

सस्नेह तुम्हारा—'अशोक'

और, पत्र का आखिरी वाक्य याद करते-करते अशोक के ओठों पर फिर एक बार हलकी-सी मुस्कान फैल गई। क्या इस वाक्य से अमिता ने यही समझा होगा जो वह कहना चाह रहा था ? क्या सचमुच वह यही कहना चाह रहा था जो इस वाक्य मे ध्वनित है ? और अशोक की आखो में वह चित्र तैर आया जब पिछले वर्ष लगभग इन्ही दिनो इसी 'आफिस' मे बैठकर उसने इसी फोन पर अमिता से बात करने की कोशिश की थी। फोन हाथ मे लेते ही उसकी सारी देह कैसे फुरफुरा उठी थी, 'डायल' मे फंसी उगली किस कदर काप रही थी और तीन बार गलत नम्बर लगने पर वह बरबस हंसकर वीरेन्द्र से कह उठा था, लगता है, 'आउट ऑफ ऑर्डर' है, शाम को कर लूगा !' और फिर शाम को उसे वक्त ही नही मिला, वीरेन्द्र ने सिनेमा के टिकिट जो ले रखे थे। और सिनेमा उसके जीवन की सबसे बडी कमजोरियो मे थी।

'शौक केवल दो, सिनेमा और सिगरेट।'

अशोक ने याद किया कि अपने पहले काव्य-सग्रह में अपना परिचय देते हुए उसने यह वाक्य लिखा था, वह यह कि सिनेमा का शौक उसे

अमिता ने दिया था और सिगरेट का शौक बाबा ने। 'वसन्त टाकीज' में जब-जब अमिता के सिनेमा देखने जाने की खबर उसे मिलती तब-तब वह अपनी पढाई छोडकर अपनी गाढी कमाई मे से रुपये निकालकर सिनेमा देखने जाता था, सिर्फ इसलिए कि फिल्म खत्म होने पर वह हॉल से निकलती अमिता के सामने पड जाए और उसकी नजर पडते ही चौंककर कहे : 'अरे आप !', और जब अमिता पूछे : 'कहिए, पिक्चर कैसी लगी ?' तो कहे : 'पहले आप बताइए !' और तब जो बातचीत का सिलसिला शुरू हो तो बाबा या इन्दु बाबू जो भी उसके साथ हो, वे विवश होकर उससे कहें : 'चलिए, आप भी साथ ही चलिए न, गाडी मे बातें होती रहेंगी।'

पर अशोक ने इस तरह सिनेमा का शौक चाहे ले लिया हो, उसका यह सपना एक बार भी पूरा न हुआ। उसकी कभी हिम्मत ही न पडी कि पिक्चर खत्म होने पर अमिता से भेट करे। आखिरी वक्त उसके पैर जवाब दे जाते और वह भीड मे अपने-आपको मिलाकर इक्के के अड्डे पर आ जाता—

'आइए, बाबूजी, वजीरपुरा !'

और अशोक ने अत्यन्त विस्मय के साथ पहचाना कि बीस बरस पहले की उस हिचक मे और आज अमिता को फोन करते वक्त की इस—'नर्वसनेस' मे हो न हो कोई सम्बन्ध है। पर क्या है यह हिचक ? अगर यह इतनी गहरी है तो निश्चय ही इसका कोई गम्भीर कारण भी होगा। पर, क्या है वह कारण ?

'क्या सोच रहे हो ?'

अशोक चौंक पडा, जैसे धम्-से गिरा हो ! अपने भावों के जाल मे उलझकर वह यह भूल ही गया था कि वीणा उसकी बगल मे ही बैठी है और फोन पर अमिता से क्या बात हुई, यह जानने के लिए उत्सुक और सप्रश्न दृष्टि मे उसे देख रही है। यत्नपूर्वक प्रकृतिस्थ होते हुए उसने उत्तर दिया : 'सोच रहा हूँ, मुश्किल मे फंस गया। अमिता कहती है कि आज जाना नही हो सकता, और मैंने रिज़र्वेशन ले रखा है।'

'तो इसमें इतना सोचने की क्या बात है ?' वीणा ने सहज भाव से

कहा : रिज़र्वेशन कैंसिल करा दो। आज न सही, कल चले चलेंगे। मैं तो बल्कि सोचती हूं, एक तरह से अच्छा ही हुआ। शारदा भी बुरा मान रही थी कि उसके यहां नहीं जा सके। अब रुक रहे हैं तो कल उसके यहां भी हो आएंगे।'

'पर इतनी जल्दी रिज़र्वेशन कैसे मिलेगा?'

'न मिलेगा, न सही। बिना रिज़र्वेशन क्या जा नहीं सकते? और तुम तो एक दिन इलाहाबाद रुकने की कह रहे थे। इलाहाबाद तक तो दिन ही दिन में पहुंच जाएगे, रिज़र्वेशन की ज़रूरत ही क्या है! वैसे, कभी-कभी लास्ट मिनिट पर भी रिज़र्वेशन मिल जाता है, एक बार कोशिश तो करो!'

अशोक ने सोचा, वीणा कितनी भोली है! कितनी निश्छल!

प्रकट में कहा, 'बच्चों को तकलीफ तो होगी, पर ख़ैर!'

'अरे, सब ठीक हो जाएगा। हां, अमिता से मिलने का क्या तय हुआ?'

'वह ख़ुद ही आ रही है, पांच बजे।'

'तो यहां बैठे क्या कर रहे हो? चलो न, कुछ जलपान का भी तो इन्तज़ाम करना होगा।'

'चलो!'

अशोक एक झटके के साथ उठ खड़ा हुआ।

दो

दीवान पर अधलेटे अशोक की निगाह सामने की अलार्म घड़ी पर पड़ी—तीन बजकर सत्रह मिनट। पांच बजे अमिता आएगी।

पांच बजे अमिता आएगी!

अमिता आएगी !

यह कैसी पुलक है जो बेचैनी बनी जा रही है ! वह सह नही पाता है या फूला नही समा रहा है ! बात क्या है जो दिल ऐसा धड़क रहा है ? अमिता आएगी !

ठीक है, अमिता आएगी तो क्या हुआ ? अमिता क्या आज पहली बार आएगी ? एक बार लखनऊ मे भी तो आई थी। फिर यह कंपकंपी क्यो ? आज कोई वह पहली बार नही आ रही है। बल्कि, पहली बार तो—पहली बार तो वह आई ही नही थी।

अशोक उठकर मसनद के सहारे बैठ गया। उसके ओंठों पर हसी की रेखा थिरक उठी। कैसा निरर्थक वाक्य सोचा उसने ? 'पहली बार तो वह आई ही नही थी।' मानो जब आई थी तब वह दूसरी बार हो ! पर, वाक्य क्या सचमुच निरर्थक है ?

'आप इतनी सुन्दर कविताए कैसे लिख लेते है ?' उस दिन अमिता ने विस्मय-विस्फारित नेत्रो से हसते हुए पूछा था।

'मेज पर बैठकर।' वह हस पडा था।

'और कलम हाथ मे लेकर कॉपी सामने रखकर।' अमिता ने हसी मे हंसी जोडते कहा था : 'पर ध्यान किधर होता है ?'

'ध्यान ?' उसने मजाक के ढग पर कहा, 'ध्यान खुली खिड़की से दीखने वाले सामने के दृश्य पर होता है : धीरे-धीरे सूरज अपनी किरणें समेटता है, अधेरा घिर आता है, फिर तारे टिमटिमाने लगते हैं, और जमुना की लहरो पर छाया की तरह तैरती कोई नाव धीरे-धीरे दूर होती दिखाई देती है। अगर बीच-बीच मे बगल के पुल पर धड़धडाती ट्रेन की सीटी न हो, तो शायद मैं महाकाव्य लिख डालू।'

'सच ! आपका कमरा तो बडी सुन्दर जगह मे मालूम होता है। एक दिन मैं भी चलकर देखूगी।' अमिता ने कहा।

'आप चलेंगी ? ···मेरा मतलब, तुम चलोगी, सचमुच ! बोलो, कब चलोगी ?' अशोक ने पहचाना कि बात विशुद्ध हंसी की कोटि से कुछ नीचे उतर आई है।

'अगले रविवार को कैसा रहेगा?'
'बिलकुल ठीक।'

सहसा चीनी के बर्तनों की आहट ने अशोक का ध्यान मोड दिया।
अशोक ने सुना, वीणा जलपान की तैयारी के सिलसिले में नौकर को जरूरी हिदायतें दे रही थी।

और अशोक ने सोचा, उसने भी तो ऐसे ही तैयारी की थी। उस दिन रात को घर लौटकर उसने कमरे पर नज़र डाली थी तो उसकी अकिंचनता पर वह घबरा गया था। अमिता आएगी तो क्या कहेगी, वह कहा बैठेगी, विमलेन्दु कहां बैठेगा, और जलपान का क्या होगा? और अगले रविवार के बीच के वे दो-तीन दिन उसने कैसी हड़बड़ाहट मे बिताए थे। प्रशान्त के यहा से फर्श, चादर और मेजपोश, पड़ोसी के यहां से कुर्सिया और टेबिल-फैन, और सामने के होटल से चीनी के बर्तन और चाय का सामान—न जाने क्या-क्या उसने जुटाया था। कितना अनाड़ी था वह, कितना बेसहारा और बेचारा। अमिता के आने की सम्भावना से उसकी जिन्दगी की नीव ही हिल गई थी।
और जब अमिता नही आई तब! तब तो मानो भूकम्प ही आ गया था।

रविवार को अपराह्न चार बजे वह मैत्र साहब के यहा जा पहुंचा था।
विमलेन्दु ने आकर नमस्कार किया।
'अरे, तुम तो अभी तैयार भी नही हुए। और, दीदी कहां हैं?'
'अन्दर लेटी हैं।'
'बुलाओ तो।'
अमिता आई तो उसने कहा, 'तुम भी खूब हो! अरे, ऐसे ही चलोगी क्या?'
'कहां जाना है?'
'क्यों, भूल गई? तुमने कहा था न कि रविवार को मेरा कमरा देखने

चलोगी ?'

'अरे, हा !' कहकर अमिता भीतर भाग गई ।

अशोक को सूझा ही नहीं कि वह क्या करे—खड़ा रहे, बैठ जाए या चल दे । तभी विमल ने आकर कहा : 'मा बुलाती है !'

अशोक ने भीतर जाकर मा के पैर छुए !

मा बोली, 'क्यो अशोक, क्या बात है ?'

'मैं अमिता और विमल को ज़रा अपने घर ले जा रहा हू, मा !'

'अरे, ये वहा क्या करेंगे ? पागल !'

'ज़रा घूम आएगे ।'

चुप्पी का एक क्षण ! अशोक को याद है, वह क्षण इतना लम्बा था, इतना लम्बा था, मानो अब भी न बीता हो ।

और उसके बीतने पर जब उसने अपना उदास चेहरा ऊपर उठाया तो मा ने मुस्कराते हुए कहा था : 'अच्छी बात है । एक दिन हम सब घर चलेंगे । मैं भी चलूगी । पर आज नही, आज मेरे पैरो मे दर्द है ।'

मा को गठिया की शिकायत थी ।

अशोक के मन ने अशोक से कहा · 'अभी कैसे मान गए ? कम से कम इतना तो कहो कि मैंने कैसी-कैसी तैयारियाँ की है, और कि अमिता ने खुद प्रस्ताव करके वचन दिया था कि वह आज जाएगी; पर अशोक ने मुह नही खोला ।

क्यो ?

हिचक ! पर हिचक क्यों, और कैसी ?

और अशोक को याद आया कि बाद के दो वर्षों मे उसने दो-चार बार तो ज़रूर ही मा से अपना आग्रह दुहराया होगा—पर उस दुहराने मे वह आग्रह नही भर पाया जो पहली बार था—और हर बार मा ने फिर कभी चलने का वचन दिया, क्योंकि उनके पैरों मे दर्द था । और अशोक आश्चर्य करता रहा कि यह कैसा दर्द है जो मा सिनेमा भी हो आती हैं, गागुली साहब के यहा भी हो आती हैं, और लॉन मे भी टहल लेती हैं, पर उसके यहा नही जा पाती ।

'मैं बंगला सीखूंगा।'

पल-भर अशोक समझ ही न सका कि यह वाक्य उसने कहा कि वीरेन्द्र ने, पर जब उसने सिर घुमाया तो देखा, सामने वीरेन्द्र खड़ा हंस रहा है। वह बिना बोले प्रश्नसूचक दृष्टि से उसे देखता रहा।

'इस तरह क्या देखते हो?' वीरेन्द्र कहने लगा, 'मैं सच कह रहा हूं, मैं भी बंगला सीखूंगा। इतने दिन हो गए इस कलकत्ते में, आज तक हमारी ओर किसी ने ताका भी नहीं, और आपको आए अभी दो दिन भी नहीं हुए कि लोग दावत पर आने लगे। जरूर यह जादू बंगला सीखने का ही है।'

अशोक की भौंहें चढ़ गईं! थोड़े कड़े स्वर में बोला, 'देखो वीरेन्द्र, यह मज़ाक ठीक नहीं।'

'अरे भाई, मैं क्या मज़ाक करूंगा, मैंने तो आज तक उन्हें देखा भी नहीं। हमने तो जब तुम कालेज में पढ़ते थे तभी कुछ उड़ती हुई-सी खबर सुनी थी कि अमिता और तुम्हारा 'रोमान्स'——'

'शट अप, आइ से!'

अशोक का मुंह लाल पड़ गया।

वीरेन्द्र कुछ देर टकटकी लगाए उसे देखता रहा। फिर ढीला पड़कर बोला: 'मुझे अफसोस है, मेरा मतलब यह नहीं था——' और कमरे के बाहर चला गया।

अशोक पत्थर की मूर्ति बना बैठा रहा। यह उसे हो क्या गया कि जिसके घर वह मेहमान बनकर ठहरा हुआ है, उसी पर बिगड़ पड़ा। पर वीरेन्द्र का भी तो कुसूर है। अब तीन बरसों से वह मुझे जानता है और फिर भी वह ऐसी बात कह सका! वह खूब जानता है कि मैं ऐसा मज़ाक नहीं सह सकता, वह... फिर, वह क्या जानता है? अमिता के बारे में क्या कभी भी कोई चर्चा हुई उनमें? स्कूल छोड़ने के बाद ही तो दोनों की जीवन-धाराएं अलग-अलग हो गई थीं, और बीच-बीच की चन्द मुलाकातों के अलावा दोनों एक-दूसरे के बारे में [illegible] यहां तक कि बरसों बीत जाते थे बिना एक चिट्ठी लिखे।

पर चिट्ठी [illegible]
लिफाफे के बाद आज तक उसकी भी चिट्ठियां मिलती हैं

गिनी जा सकती है। जब वीणा बनारस होस्टल में रहती थी तब उसकी बधी-बधाई शिकायत थी कि अशोक चिट्ठी नहीं लिखता। पर फिर भी वीरेन्द्र और उसके बीच क्या कोई दूरी आ सकी है? इस विलक्षण आत्मीयता की चर्चा क्या मित्रों में नहीं होती रही है? फिर वह वीरेन्द्र पर ऐसे क्यों बिगड़ा जैसे···जैसे वह रणवीर सक्सेना हो!

रणवीर सक्सेना?

हिन्दी का पीरियड खत्म होने पर जब अशोक लाइब्रेरी में जा रहा था, तब अचानक उसने सुना : 'अशोक, सुनो तो ज़रा!'

अशोक ठिठक कर पीछे मुड़ा तो देखा उसका सहपाठी रणवीर सक्सेना कुछ दुष्ट भाव से मुस्करा रहा है। कुछ आशंकित-सा कुछ दमित-सा वह प्रतीक्षा करने लगा।

बरामदे के एक खम्भे की ओट की ओर चलते-चलते वह धीमे से बोला, 'यार अशोक, बुरा न मानो तो एक रिक्वेस्ट है।'

'क्या?' उसका स्वर रूखा ही कहला सकता था।

'एक बार जरा मिस मैत्र से मुलाकात करवा दो।'

'क्या मतलब?' अशोक गरज उठा।

'यार' इतना बिगड़ते क्यों हो? दोस्तों से भी भला कोई छिपाता है? हम सब जानते हैं कि तुम्हारा उनके यहाँ रोज का आना-जाना है, और यह भी कि यह मिस मैत्र तुम पर फिदा है।' रणवीर सक्सेना ने कुछ अतिरिक्त अजिज़ी से कहा।

'तुम···तुम···' अशोक तमतमा उठा, 'यू आर मीन, यू आर डर्टी'!'

'सुनो तो···'

पर अशोक ने पलटकर नहीं देखा।

लगभग एक हफ्ते तक रणवीर का यही रवैया रहा कि क्लास में पैर रखते ही ज्यों ही उसकी नजर अशोक पर पड़ती, वह उसके पास आकर उसके कान में चुपके से कहता : 'बस, एक बार!'

अशोक ने अपने शरीर की सिहरन से पहचाना कि वह एक हफ्ता उसने कैसे

यन्त्रणा में बिताया था। बेबस क्रोध से वह उबल-उबलकर रह जाता था। रात को बिस्तर पर पड़ा घंटों वह इस दुर्व्यवहार पर फफकता रहता। हार कर और कोई उपाय न देखकर उसने तय किया कि वह सीधे बाबा के पास जाकर सक्सेना की शिकायत करेगा। सक्सेना ने 'इकानॉमिक्स' ले रखी थी और बाबा उसे पढ़ाते थे !

'क्यों, अटके क्यों ?'

अशोक ने प्रश्न किया तो उत्तर पाया कि वह चोट उसके मन में आज भी सूजी हुई है। उसने सोचा था कि बाबा उसकी बात सुनते ही क्रुद्ध होकर सक्सेना को बुलवाएंगे और उसी के सामने उससे सफाई माँगेंगे। सक्सेना के परास्त विवर्ण मुख की कल्पना से उसे दिन-भर कैसा सन्तोष मिला था !

पर बाबा के व्यवहार से उसका दु ख घटने के बजाय कुछ बढ़ ही गया। सारी बात सुनकर उन्होंने उसको समझाते हुए कहा 'देखो अशोक, आइ नो यू, तुम बहुत सेन्सटिव हो। ऐसी बातों की बेकार चिन्ता करते हो। आइ रिगार्ड यू ऐज़ माइ सन, पढने में मन लगाओ, लेट देम नाट डिस्टर्ब यू।'

ठीक है, मैं तो पढ़ने मे मन लगाता हू, पर कोई दुष्ट अमिता के बारे में इस ढंग की बाते करे, और मैं चुपचाप सुन लूं; क्या आप यह कहना चाहते है ? —अशोक ने कहना चाहा, पर उसके ओठ खुलने से पहले ही बाबा उसकी पीठ पर आश्वस्ति का हाथ फेरते हुए क्लास मे चले गए।

अगले दिन सक्सेना ने उसे देखते ही कहा : 'हलो मिस्टर सेन्सिटिव !' और अशोक खून का-सा घूंट पीकर रह गया।

बरसों पुरानी उस बात की याद से आज भी अशोक की मुट्ठियाँ भिंच गयीं। उसने आँखें बन्द कर ली तो रणवीर सक्सेना का दुष्ट मुस्कराता चेहरा उसे स्पष्ट दीखने लगा और धीरे-धीरे वह चेहरा धुंधला पड़ता गया, धुंधला पड़ता गया, और अचानक उसके स्थान पर एक और ही चेहरा उभर आया। अशोक ने एक अजीब धड़कन के साथ पहचाना: मिस्टर वासानी।

एक नफरत-भरी हंसी मे अशोक के ओंठ फैल गए।

ज्याग्रांफी के टीचर मिस्टर बालानी ! भगवान ने ठीक ही उन्हें लंगडा बनाया था। पता नही पढाने में कैसे थे, पर अशोक ने तो सदा उन्हें कालेज की लडकियों के ही आसपास मंडराते पाया था।

भरी दोपहरी मे पेडों के तले, लाइब्रेरी के बाहरी कक्ष मे, कैण्टीन की मेज पर और खाली क्लासों की बेंचो पर—मिस्टर बालानी हमेशा लड़कियो मे ही बतियाते नजर आते थे।

उस दिन शाम को जब वह विमल को पढाने पहुंचा तो उसने देखा, ड्राइंग-रूम मे अमिता और मिस्टर बालानी ! पास ही स्टैण्ड पर एक नक्शा टंगा था, अमिता के पास सोफे पर कुछ किताबें पड़ी थी और बालानी साहब मुस्कराते हुए कुछ फरमा रहे थे।

पलक मारते अशोक का खून खौल उठा।

विमल को एक सवाल हल करने को देकर वह ड्राइंग रूम में आकर खडा हो गया। सचमुच अगर पढ़ाई हो रही होगी तो उसके पहुंचने पर भी जारी रहेगी, उसने सोचा था।

बात तो जारी रही, पर वह पढाई की नही थी। बालानी साहब किसी पिकनिक का किस्सा सुना रहे थे, और अमिता मुग्ध भाव से सुन रही थी।

अशोक प्रकट धृष्टतापूर्वक वही खड़ा रहा।

जब उसे खडे-खडे इतनी देर हो गई कि बात करना जरूरी हो गया, तब बालानी साहब बोले : 'मेरा ख्याल है, विमल अपने कमरे मे आ गया है।'

'जी, वह सवाल लगा रहा है।' अशोक को उत्तर देने मे मजा आया।

कुछ देर बीतने पर बालानी साहब फिर उसकी ओर मुखातिब हुए, बोले, 'और कहिए !'

अशोक जान-बूझकर चुप रहा।

अब की बार जब बालानी साहब बोले तो उनका चेहरा देखने लायक था। माथे पर बल पडे हुए थे, पर ओंठों पर हंसी थी। बोले : 'डौंट वरी, शी इज़ क्वाइट सेफ विद मी, आइ वोन्ट ईट हर अप !'

'आइ नो यू कान्ट, विकाज़ यू आर नौट ए कैनिबल।' अशोक ने कहा : 'फिर भी जो वात इसके लिए अच्छी है, उसे सुनना मेरे लिए भी अच्छा होगा।'

इतना कह कर अशोक कुछ ढीला पड़ा। मुस्करा कर वोला : 'दर-असल, मुझे अमिता से एक छोटा-सा काम था।'

अमिता ने उसकी ओर ताका।

'तुमने आज 'गोरा' देने की बात कही थी न।'

'अभी लाती हूं,' कहकर अमिता अन्दर गयी।

अमिता के जाने पर मिस्टर वालानी उठ खड़े हुए और उसकी ओर हाथ वढ़ाते हुए वोले : 'यंगमैन, आइ विल लाइक टू शेक हैण्ड्स विद यू!'

उनके बढ़े हुए हाथ को हवा में झूलता छोड़कर अशोक विमल के कमरे में आकर अपनी कुर्सी पर वैठ गया और मुस्कराने लगा।

उस दिन जव विमल को पढ़ाकर अशोक घर लौट रहा था तो चौराहे पर उसने देखा, मिस्टर वालानी खड़े हैं। उसने नज़रें दूसरी ओर घुमा ली और चढ़ाई के बावजूद साइकिल की रफ्तार तेज रखी।

'मिस्टर अशोक!'

अशोक का मन हुआ कि वह उस पुकार को अनसुनी करके चलता चला जाए, पर उसके मन के संस्कार ने उसे ऐसा न करने दिया। लाख हों, हैं तो टीचर ही, प्रकट में अनादर कैसे करे!

उसने बड़े वेमन से साइकिल रोकी, उतरकर एक बार इधर-उधर ताका मानो जानना चाह रहा हो कि उसे किसने पुकारा और फिर मिस्टर वालानी को जैसे पहली बार देखा हो ऐसे तपाक से उनकी ओर वढ़ते हुए वोला : 'कहिए!'

'घर जा रहे हैं?'

'जी हां!'

'आपसे कुछ बातें करनी थीं।'

'आज्ञा कीजिए।'

'इफ यू डोण्ट माइण्ड, प्लीज कम अप टु माइ रूम एण्ड हैव ए कप आफ

टी।'

मिस्टर वालानी होस्टल के वार्डन थे, और तैंतालीस वर्ष की उम्र में भी कुँआरे थे !

अशोक विवश होकर साथ हो लिया। मिस्टर वालानी की लगडाहट के कारण चाल बहुत ही धीमी रखनी पड़ी, और चढाई पर साइकिल भी घसीटनी पडी।

होस्टल दो फर्लांग से ज्यादा दूर न रहा होगा, पर अशोक को लगा जैसे एक मुद्दत हो गई। उसने कोशिश की कि मिस्टर वालानी की बातों पर ध्यान न देकर सिर्फ हू-हा ही करता रहे, पर इतना जानने से वह न बच सका कि मिस्टर वालानी उसकी विलक्षण प्रतिभा और योग्यता की प्रशसा कर रहे थे, उसकी सादगी और शालीनता के गुण गा रहे थे।

अशोक प्रशसा के एक-एक वाक्य पर गर्व से फूलने के बजाय सिमटता जा रहा था। उसने लक्ष्य किया कि प्राय: ऐसे ही वाक्य जब बाबा कहते है तो कैसा नाच उठता है, पर मिस्टर वालानी ! जरूर इसमे कोई चाल है। सावधान 'बी केअरफुल' ! !

'आइ वाण्ट टू हेल्प यू !'

अशोक ने देखा कि वे मिस्टर वालानी के कमरेमे पहुच गए है, और आमने-सामने बैठे है, और मिस्टर वालानी अपनी बात की परिणति के रूप मे यह वाक्य कह रहे है।

अशोक ने सजग होकर उत्तर दिया : 'मैं आपकी इस कृपा के लिए कृतज्ञ हू। कभी किसी सहायता की आवश्यकता पड़ी तो अवश्य कष्ट दूगा।'

'सहायता की आवश्यकता तो तुम्हे अब भी है, तुम छिपाना चाहो तो और बात है।'

'मैं समझा नही।'

'देखो, अशोक बाबू !' मुझसे पर्दा करने की जरूरत नही। 'आयम ए रीयल फ्रेण्ड' मैं तुम्हारा सच्चा मित्र हूं। और मैं जानता हू, तुम अमिता को प्यार करते हो।'

अशोक को जैसे काठ मार गया। उसने आखें फाड़कर मिस्टर बालानी की ओर देखा, उनके चेहरे पर एक अजीब-सी चमक थी। अशोक को लगा जैसे वह सहानुभूति के घूंघट में विजय की चमक हो। उसने जमे हुए स्वर मे कहा : 'आपको ऐसी बातें नही करनी चाहिए।'

'अशोक बाबू, डरो मत ! मैंने दुनिया देखी है और मैं कहता हूँ, मैं तुम्हारी हेल्प करूँगा। ताकि तुम्हारा सपना सच हो जाए।

अशोक की आंखो मे विवश क्रोध के आंसू आ गए : 'मिस्टर बालानी आप टीचर होकर ऐसी नाजायज बातें करते हैं। मेरे मन में तो एक क्षण को भी ऐसा भाव नही आया। मेरी बात मानिए, आप सरासर गलती पर है।'

मिस्टर बालानी एक क्षण तक उसकी ओर ताकते रहे। उनके ओठो पर एक हल्की-सी मुस्कराहट जैसे चिपकी हो। अशोक का सर्वांग रोष और उद्वेग से काप रहा था और उसकी आंखो से घृणा की चिनगारिया छूट रही थी। 'यू, यू, डौग ! यू थिन्क एवरी बडी इज लाइक यू !' तुम क्या जानो, मैं अमिता को क्या समझता हूं। यू आर इनकैपेबिल आफ सच नोबिल इमोशन्स !' उसका मन तेज़ी से बोलता जा रहा था, पर आवेग ने उसके ओठ अचल कर दिये थे।

'जल्दी की ज़रूरत नही। मेरी बात पर घर जाकर ठण्डे दिमाग से सोचकर फिर बताना। यू नो, आइ लाइक यू !'

अशोक ने चाहा कि कोई सख्त बात कहकर इस राक्षस का मुह बन्द कर दे, पर कुछ कह न पाया। अचानक उठकर पहले एकदम मिस्टर बालानी की ओर बढा, फिर ठिठका, फिर पलटकर तेजी से बाहर निकल कर साइकिल पर सवार होकर चला आया।

'साइकिल पर जाकर देखो न, अभी तक दूध क्यो नही आया ?' वीणा नौकर से कह रही थी, 'और उधर से कुछ ताजे फल भी ले आना।'

'पापा !' अचानक कविता ने कमरे मे आकर, पूछा : 'आज कौन आयेंगे ?'

'एं; अशोक ने उत्तर दिया : 'आज तुम्हारी आण्टी आयेंगी।'

'कौन-सी आण्टी ?'

'एक नयी आण्टी ! तुम तो उन्हें जानती नहीं हो, कैसे बताऊं ! जब आयें तो देख लेना।'

'वाह, जानती क्यों नहीं, वीणा ने प्रवेश करते हुए कहा : 'पिछली बार जब लखनऊ में अमिता हमारे यहाँ आई थी तो कविता तीन बरस की थी। याद है न कविता, अमिता आण्टी तुम्हारे लिए गुब्बारे लाई थी, और चाभी वाली मोटर !'

'मुझे तो याद नहीं आता, मम्मी !'

'अरे, ज़रा-सी तो थी, इसे क्या ध्यान होगा।' अशोक बोला।

'अच्छा, अब तुम उठो,' वीणा ने कहा : 'ज़रा हाथ-मुह धो लो और कपड़े बदल लो। उसके आने में अब देर नहीं है।'

अशोक की निगाह टाइमपीस पर गई : 'चार बारह ! अच्छी बात है', कहता हुआ वह बाथरूम की ओर चल पड़ा।

तीन

कमरे से बाहर निकलते ही अशोक ने देखा कि गैलरी में वीरेन्द्र खड़ा जाली से बाहर दूर पर नज़र गड़ाए है। पास की डोरी पर टंगे तौलिए को अशोक ने बहुत धीरे-धीरे उतारकर कन्धे पर रख लिया और चुपके-चुपके बाथरूम की ओर जाने लगा। चुपके-चुपके, क्योंकि वह वीरेन्द्र का ध्यान भंग नहीं करना चाहता था।

या कि वीरेन्द्र के प्रति उस आकस्मिक दुर्व्यवहार के कारण उसमें परिताप-जन्य सकोच आ गया था ?

'सुनो अशोक !'

अशोक ठिठका, फिर लौटकर वीरेन्द्र तक आया, और अपने दोनों हाथों से उसके कन्धे झकझोरता, उसकी आंखों में अपनी आंखें डालता बोला : 'कहो !'

'तुम्हें तो मालूम ही है, सुधा सुबह से अपने चाचा जी के यहां गई हुई है। मैं सोचता था, तुम ठीक समझो तो उसे बुला लाऊं!'

'क्यों!'

'भई, घर में मेहमान आ रहे है और मेज़वान ही गायब! अच्छा नही लगेगा न!'

'तुम कोई चिन्ता मत करो, वीरेन्द्र! वीणा तो है, सब ठीक हो जाएगा। और फिर अमिता के साथ ऐसी क्या फार्मेलिटी है?'

'तुम्हारी फार्मेलिटी न सही, मेरी तो होगी ही। मुझे अपनी पोज़ीशन का भी तो ख्याल करना होगा।'

'वीरेन्द्र, फार गाड्स सेक, मुझे मिसअण्डरस्टेण्ड मत करो। मैंने जो कहा, नसकी बैकग्राउण्ड है। तुम नही जानते, मुझे इस तरह का मज़ाक कितना नापसन्द है। फिर भी···फिर भी, लो मैं माफी मागता हू।'

और उसने वीरेन्द्र को कसकर लपेट लिया।

वीरेन्द्र की आखें छलछला रही थी: 'मैं तो मज़ाक कर रहा था। जस्ट ए प्राइवेट लिटिल जोक। क्या मैं तुम्हे जानता नही! पर मुझे तो दुःख इस बात का है कि मिसअण्डरस्टैण्ड तुमने किया।

'अच्छा, जाने भी दो!'

'मुझे खुशी है, सच अशोक, मुझे खुशी है कि बात क्लीअर हो गई। एक बात कहूं—इतने समझदार और मैच्योर होकर भी, इतने दिन बीत जाने पर भी, तुम इतने टची बने हुए हो?'

'एक तरह से तुम्हारी बात ठीक है, क्योंकि तुम फैक्ट्स नही जानते। काश मैं बता सकता!'

अशोक ने अपनी जकड़ ढीली कर दी, और फिर एक क्षण वीरेन्द्र को क्षमा-मिश्रित स्निग्ध दृष्टि से देखकर बाथरूम की ओर चल दिया।

ढलती दोपहरी की रोशनी में वह बाथरूम अशोक को कुछ नया-सा लगा।

कुछ नया-सा, या कुछ पहचाना-सा?

अचानक अशोक के मन मे एक बिजली-सी कौंध गई। एक अभिज्ञान के सत्य ने उसे अभिभूत कर लिया।

जब से वह वीरेन्द्र के यहा आकर ठहरा था, तभी से उसे इस बाथरूम में आते ही अजीब-सी चौक लगती थी, मानो इसे कहीं देखा हो, मानो इसमे कोई पुरानी परिचित गंध का आभास लहरा रहा हो। आभास का वह एक क्षण रोज़ ही उसके लिए एक पहेली बनकर बुझ जाता रहा है। आज अचानक वह पहेली सुलझ गई।

एक पुलक के साथ उसे याद आया : ठीक है, बाबा के यहा का बाथ-रूम भी बहुत कुछ ऐसा ही था। सिर्फ एक दिन, केवल एक दिन देखा वह बाथरूम। उसके ध्यान की कैसी अतल गहराई मे आज तक बैठा रहा।

फागुन का महीना, होली का वह दिन।

फाइनल परीक्षा मे सिर्फ एक हफ्ते की देर थी, और अशोक पढने मे मशगूल था कि अचानक उसे याद आया : कल रंग है, चारो ओर अबीर-गुलाल और हो-हल्ला होगा, सड़को, गलियो और घरो मे लोग मुह पोतते, रंग डालते, ऊधम करते फिरेंगे, उसके आठ घंटे बेकार चले जाएंगे। कीमती आठ घंटे !

क्या उपाय हो ?

अशोक ने साईकिल उठाई और फौरन अमिता के घर जा पहुंचा।

बरसाती मे साईकिल खडी करते ही उसे याद आया। मा-बाबा तो कलकत्ते गए हैं। उसे मालूम था फिर भी भूल गया ?

सचमुच भूल गया था ? भूल गया होता तो क्या ऐसे तपाक से वह चला आता ? हिचकिचाता नहीं ?

निर्विकार चेहरे से उसने पोर्च की दो सीढियां चढ़ी। पुकारा : 'विमल !'

उत्तर मे चिक उठाकर बाहर आई अमिता, 'अरे आप ! आइए !'

'विमल नही है ?'

'आता ही होगा, आप बैठिए !'

भीतर ड्राइंग रूम में इन्दु बाबू थे और माला। पास के कमरे से घुंघरुओं की आवाज़ आ रही थी, मीना की डास-प्रैक्टिस की।

इन्दु बाबू माला के साथ एक एल्बम उलट-पुलट रहे थे।

अचानक माला ने कहा : 'अरे-अरे ! ये तो अशोक बाबू हैं। देखू !'

अशोक भी कुछ उत्सुकता से, कुछ मोह से उस तस्वीर पर झुक गया।

वह तस्वीर आज भी अशोक की आखों में है, वह अद्वितीय तस्वीर ! मैत्र परिवार से उसकी आत्मीयता का एकमात्र प्रमाण !

अशोक को याद आया, मां-अमिता को अपने घर ले जाने के उसके बार-बार के आग्रह का अन्ततः यही एक परिणाम निकला था कि उसके जन्मदिन पर बाबा ने स्वयं काफी आग्रह से विमल और मीना को उसके यहां भेज दिया था, और जन्मदिन पर उसके पास आए अन्य एकमात्र अतिथि उसके सहपाठी और मित्र प्रशान्त ने यह तस्वीर उतारी थी।

तस्वीर में टीन की एक कुर्सी पर अशोक बैठा था। उसके पास में विमल खड़ा था, और उसकी गोद का सहारा लिए मीना, जैसे मचल रही हो।

इधर के वर्षों में जब-जब यह तस्वीर अशोक के सामने आई है तब-तब उसका मन उमड आया है। अपने एकमात्र कुरते में उसकी कृश-दीन देह और कुछ अतिरिक्त मुस्कराता चेहरा—उसे लगा है कि जैसे यह चित्र उसका न होकर किसी और का हो। और फिर दूसरे ही क्षण लगा है कि यह चित्र अनमोल है, क्योंकि यह उसकी विगत विपन्नता की अमिट छाप है और उस विपन्नता में उस दिन अचानक विमल और मीना के प्रादुर्भाव से उत्पन्न उसके कृतार्थ भाव की।

और मां-अमिता के न आ पाने के अभाव की।

नहीं, अशोक इस तस्वीर का निषेध नहीं करेगा। उसे गर्व है अपनी उस विपन्नता का, अपनी उस कृतज्ञता का, और अपने उस अभाव का !

विमल के आने पर जब उसने बातों-बातों में अपना प्रस्ताव रखा कि रंग का दिन वह उनके यहां बिताएगा तो विमल को खुशी हुई थी, अमिता को कोई काम याद आ गया था, इसलिए वह उठकर चली गई थी। पर सबसे बढ़कर प्रतिक्रिया थी इन्दु बाबू की।

'सर्टेनली, सर्टेनली, इट विल बी ए प्लेजर। और मीना, ठाकुर को बोल देना, अशोक बाबू के लिए जरा हिन्दुस्तानी ढंग का खाना।'

'नहीं, नहीं, सो कुछ नहीं। जो आप खाते हैं, वही मैं खा लूंगा।'

इन्दु बाबू को नहीं मालूम था कि अशोक कितना उस घर में प्रविष्ट है, कितना उनके ढंग पसन्द करता है। अटकल तो थी, ज्ञान न था। इसलिए 'ठीक है, ठीक है' के अलावा और कुछ न कह पाए।

उस दिन की याद से अशोक को बड़ा कष्ट हो रहा है, बड़ा मर्मान्तिक कष्ट, जैसे जी में गडी कोई फांस निकाल रहा हो। तभी तो वह उस दिन की याद नहीं करता। तभी तो उसे उस बाथरूम का ध्यान इतनी कठिनाई से आया है, अब तक तो वह सिर्फ झलक ही मारता था। आज ही वह पह-चान लौटी है, आज जब उसकी सारी चेतना अमिता के आगमन के लिए प्रस्तुत हो रही है, जैसे प्रत्यूप-वेला में खुलता कमल।

पर, यह कष्ट क्यों?

अशोक को याद आई वह बेचैनी, वह अनाश्वस्ति जो उस दिन उसने अमिता के यहां महसूस की थी। जरा-जरा-सी आहट पर उसकी वह चौंक, और ब्राउनिंग की क्लिष्टता पर वह ग्रन्थ जो उसे घर आकर दुबारा पढ़ना पड़ा था।

हां, ठीक है यह कष्ट—क्योंकि, क्योंकि उस दिन घर पर बाबा नहीं थे।

क्योंकि बाबा होते तो शायद वह वहां नहीं होता। शायद क्या, निश्चित ही वह नहीं होता।

क्योंकि बाबा पलभर में उसकी समस्या का समाधान कर देते। 'अपना कमरा भीतर से बन्द करके बैठ जाना और पढ़ते रहना। तुम्हें भला कौन डिस्टर्ब करने आएगा?'

तो क्या, अशोक ने सोचा, उसके मन ने उसे धोखा दिया था?

ज़रूर दिया था, ज़रूर वह धोखा था। वह डिस्टर्बेंस से बचने नहीं गया था, डिस्टर्ब होने और इसीलिए जा सका था कि बाबा घर पर नहीं थे। बाबा होते तो?

तो क्या वह किसी भी तरह अपनी हिचक पार कर पाता?

अशोक ने नल खोला, और धार के नीचे अपना सिर झुका दिया। पहले कुछ गरम, फिर धीरे-धीरे ठण्डे होते पानी ने उसकी कड़वाहट धो डाली। पानी की धार उसे अपने गालों पर बहुत ही मुलायम और मीठी लगी,

ठीक अमिता की उन उंगलियों की-सी, जिनसे उसने गुलाल लगाया था।

भोर का धुंधलका छंटते-न-छटते ही अशोक जा धमका था अमिता के यहां। सही रंग चालू हो गया तो शहर पार करके वहां तक जाना बड़ा मुश्किल होगा। और उसके पास कुल उतने ही तो कपड़े थे, जो उसके तन पर थे।

विमल अभी सोकर नहीं उठा था।

ठाकुर ने विमल का कमरा खोलकर कहा था : 'लीजिए मास्साब !'

'मास्साब' उसे खटका था, ठीक जैसे आज उसकी याद अशोक को खटकी है। पर उसने कुछ कहा नहीं, क्योंकि ठाकुर बेचारा क्या जाने इस घर से उसके क्या सम्बन्ध हैं ! वह चुपचाप कमरे में दाखिल हुआ। बड़ी मुस्तैदी से दरवाज़े के किवाड़ भीतर से बन्द करके चटखनी चढ़ाई और कुर्सी पर डट गया, 'आब्स्क्योरिटी इन ब्राउनिंग' खोलकर !

पर, यह क्या ? उसका मन क्यों नहीं लग रहा है ?

एकान्त-शान्त कमरा, विरल वातावरण, और सिर्फ सात दिन बाद आखिरी इम्तहान ! फिर भी अशोक को हर पंक्ति दुहरानी क्यों पड़ रही है ? उसका मन बराबर घर भर की ध्वनियां क्यों सुन रहा है ?

'आया !' ठाकुर की पुकार।

'धीरे बोलो, मास्साब पढ़ रहे हैं।' विमल की ताकीद !

और मीना के घुंघरू। यह मीना अच्छी है, हमेशा डांस की ही प्रैक्टिस करती रहती है।

अचानक कमरे में जैसे एक लहर उठी।

भीतर वाले दरवाजे के परदे में हिलोर आई, और चाय की ट्रे के साथ यह कौन प्रविष्ट हुआ—आया ? माला ? नहीं, नहीं, यह तो खुद अमिता है !

अरे ! तो क्या भीतर वाला दरवाज़ा खुला था ? मैंने ध्यान ही नहीं दिया।

सचमुच ध्यान नहीं दिया था ?

'लीजिए, मास्साव !'

'मास्साव ?'

'ओह, सॉरी ! लीजिए अशोक बाबू, चाय पीजिए !'

'अशोक बाबू !' वह अब भी सन्तुष्ट न था !

'अच्छा बाबा, अच्छा ! भाई साहब, बस ! चाय पीजिए, भाई साहब !'

कैसी मुक्त हसी थी ! वह उसी तरह क्यो न हस सका ?

'चीनी ठीक है ?'

'हा !'

फिर वही मुक्त हसी ! 'अब क्या हुआ ?'

'आप भी, भाई साहब, कमाल के हैं ! चीनी तो मैंने अभी डाली ही नही।'

'क्यो ?'

'जान-बूझकर !'

'क्यो ?'

'यह देखने के लिए कि आप होश मे है भी या नही।'

'क्या देखा ?'

'आपके होशोहवास एकदम गायब हैं।'

'असल में अमिता, इस बार इम्तहान मे बडा डर लग रहा है !'

'अरे, आप तो ब्रिलियैण्ट है, आपका क्या है ?'

'ब्रिलियैण्ट जब था तब था, अब तो थर्ड क्लास बचाना है किसी तरह !'

'यह कहिए कि फर्स्ट क्लास लाना है ! और एक हम हैं कि दिन-भर मटरगश्ती मे गुजार देते हैं।'

'बी० ए० और एम० ए० में बडा फर्क है, अमिता !'

'तो मुझमें और आपमें भी तो फर्क है !'

'कोई फर्क नही। यो आप लोग चाहे जितना फर्क करते रहें।'

यह क्या, बात को वह किधर ले जा रहा है ?

पर अमिता उस रास्ते गई ही नहीं। बोली : 'कुछ भी कहे भाई

साहब ! आज आपका यह पढ़ना बड़ा अखर रहा है। इससे तो न आते सो ही अच्छा था।'

'वाह, मैं तो आया ही हूं पढने को। तुम क्या समझती थी ?'

'कुछ नही ! आप पढिए।'

और वह मुंह फुलाकर चली गई।

अशोक ने किताब पर नजर डाली।

कि अचानक अमिता आकर बोली : 'एक बात बताना तो भूल ही गई। चीनी मैंने पहले ही डाल दी थी !'

और बिजली की तरह झमझमाती भाग गई।

पर, अशोक ने हसकर सोचा, उस दिन पढना हो नही सका। इस बार बिजली नही, वर्षा आई थी।

अशोक ने सिर उठाकर देखा, सामने माला खडी थी। एक हाथ मे मुट्ठीभर गुलाल और दूसरे हाथ में रग भरी झारी।

'अरे, अरे, यह क्या करती है दीदी, सारी किताबें भीग जाएगी।'

'तो फिर बाहर निकलिए !'

'घबराइए नही भाई साहब, कपड़े और मिल जाएगे,' अमिता ने आकर जोड़ा।

और अशोक को याद आया, पहले साल जब शाम को वह होली मिलने आया था तो बाबा ने पूछा था : 'अरे, सुबह क्यो नही आए ?'

'जी, मुझे रग खेलना अच्छा नही लगता।'

और जब उसने भीतर आकर मा के पैर छुए तो मां ने भी वही सवाल किया था : 'सवेरे काहे नही आया, अशोक ?'

'सच बताऊं मां ! सवेरे इसलिए नही आया कि मेरे पास बस ये ही कपड़े है ?'

'वाह ! तो क्या हुआ—कपडे यहा मिल जाते !'

कितना मीठा लगा था मां का यह कहना ! उस रसगुल्ले से भी ज्यादा जो बाद में अमिता ने खिलाया था।

पर उस साल की तो बात ही और थी।

अशोक को फिर भी गुद्‌गुदी हो रही थी कि अमिता ने पिछले साल की बात कैसी याद रखी है कि ऐन मौके पर उच्चारित कर दी। वह मुग्ध भाव से, पर प्रकट मे अनमना-सा, कमरे से बाहर निकल आया।

यानी घर के भीतर चला गया, बायें हाथ वाले बरामदे में, जो अक्सर पुरुषों के लिए वर्जित ही रहता था।

बरामदे मे रगों और ध्वनियों का मेला लगा था। ननकू, नूटू, किच्ची, हासि, जुई, बेला, नमिता और निर्मला—अड़ोस-पड़ोस की ढेरो सहेलियां और और मित्र वहाँ जमा थे। अशोक को कपड़े बदल लेने का कोई मौका न मिला। आनन-फानन मे वह ऊपर से नीचे तक सराबोर हो गया।

उन कुछ मिनटों को अशोक का वह क्या रूप था ! अमिता की आँखों में आश्चर्य था, विमल को सारा दृश्य एक चमत्कार-सा लग रहा था। किसने कल्पना की होगी कि अशोक ऐसा हंसमुख, चचल और बातूनी भी हो सकता है ! हाँ, सच !!

हंमी की फुहारों और रंगों के उस कोलाहल में अचानक अशोक ने पूछा : 'इन्दु बाबू कहाँ गए ?'

'उधर हैं', अमिता ने किलकते हुए उत्तर दिया।

'किधर ?'

'आइये, मैं बताऊं।' कह कर अमिता ने भीतर की ओर रुख किया।

आगे-आगे अमिता और पीछे-पीछे अशोक।

पहले जो कमरा पार किया वह, अशोक जानता था, माँ का कमरा था। फिर स्लीपिंग रूम। इसी के साथ तो अमिता का कमरा है ? अशोक ने उस कमरे मे कभी पैर नही रखा था, पर फिर भी उस कमरे का उसे खासा अन्दाजा था। बाबा से बात करते समय जब-जब वह ड्राइंग रूम में बैठा है, उस कमरे के 'हाफ करटेन'के नीचे से उसे अमिता के थिरकते पैर दीख चुके हैं। और उस बार ''पर नही, वह उस बार की याद नहीं करेगा।

अमिता के पीछे-पीछे अशोक ने ज्यों ही उसके कमरे में पैर रखा त्यों ही अमिता बिजली की-सी तेजी से पलटी और 'ओ-हो-हो' कहते किलकते उसने अशोक के गालों पर अपनी गुलाल भरी उंगलियां मसल दी।

और इस अप्रत्याशित आक्रमण को रोकने के लिए ज्यों ही अशोक ने स्वाभाविक रूप से अपने हाथ बढ़ाये, त्यों ही···उसके हाथ कहाँ जा पड़े ?

अमिता स्तब्ध रह गई ।

अशोक मग्न हो गया । ज़रा भी गति बची होती तो उसके पैर लड़खड़ा जाते ।

एक क्षण में एक युग बीतने पर अशोक ने अमिता की ओर देखा तो··· अरे ! अमिता कहा गई ?

अमिता का कमरा पार कर अशोक ने ज्यों ही बगल के डाइनिंग रूम मे पैर रखा त्यों ही एक विचित्र दृश्य देखकर वह ठिठक गया ।

इन्दु बाबू का सिर-मुह-हाथ सब रग से लिप-पुतकर एकाकार हो गये थे और अमिता आलमारी से एक रसगुल्ला निकाल कर चम्मच से उन्हें खिला रही थी।

'आप भी खायेंगे. भाई साहब !' अमिता चहकी। कौन कह सकता था कि पल भर पहले वह कैसी स्तब्ध रह गयी थी !

'नहीं, नहीं', अशोक ने कुछ इतने जोर से प्रतिवाद किया कि उसे अपना ही कण्ठ बड़ा बेसुरा लगा । उसने ड्राइंग रूम पार कर विमल के कमरे में ही आकर दम लिया ।

विमल के कमरे मे कुर्सी पर बैठे-बैठे वह न जाने किस सोच में डूब गया।

'क्या है यह कांटा, जो मन में चुभता ही जाता है ?'

ईर्ष्या ? नहो जी, ईर्ष्या भला किससे ? और क्यो ?

पढाई न कर पाने का दुःख ? सच, क्या सचमुच इसी का सोच है ?

एक चोरी का भाव ? चोरी···चोरी कैसी ?

क्यो, बाबा नही है तभी तो···तभी तो क्या···धत्···

'चलिए मास्साब, नहा लीजिए ।' ठाकुर ने आकर निवेदन किया ।

और तभी उसने पहली बार, और अन्तिम बार, उस घर के बाथरूम में प्रवेश किया था । ठाकुर के पीछे चलते-चलते कैसी ललक छा गयी थी उसके मन मे ? और जब उसने बाथरूम मे पहुचकर नहाने का उपक्रम

किया था तो पुलक से उसका सर्वांग काप रहा था, मानो उसे 'खुल जा सममम' का राज मिल गया हो। न जाने कितनी बार उसने मन ही मन दुहराया था, मैं आज बाबा के यहाँ नहा रहा हूं। साबुन की बट्टी उठायी तो उसे लगा, उसमे से न जाने कितने फूलों की सम्मिलित गंध आ रही है?

उसके लिए नये कपडे पहले ही निकालकर बाथरूम मे टांग दिए गए थे। नहाकर जब वह कपडे बदलकर बाहर निकला तो ऐसा फुदक रहा था मानो बादलो पर चल रहा हो, मानो उसने आशीर्वादों का कवच पहन लिया हो।

अन्दर पैर रखते ही इन्दु बाबू बोले: 'चलिए अशोक बाबू, भोजन कर लीजिए।'

यह स्वप्न तो नही है?

डाइनिंग रूम की टेबिल पर कुल छः जने: इन्दु बाबू और माला, अमिता और अशोक, विमल और मीना। अशोक का मन हुआ, काश किसी तरह यह क्षण जम जाता, जैसे कैमरे की फोटो! काल यही समाप्त हो जाता, और यह कमरा, यह भोजन, यह परितुष्टि अमिट हो जाती।

'यह तरकारी खाइए अशोक बाबू!' माला बोली, 'आप के लिए खास तौर से अमिता ने बनाई है।'

एक कौर खाते ही अशोक बोल उठा: 'वाह, वाह, बडी स्वादिष्ट है क्या कहते है बगला मे?···चौमत्कार!'

'निश्चौय चौमत्कार,' मीना हसी, और उसी के साथ पूरी मेज से उठा हसी का एक कोरस?

अशोक ने भी हसी में योग दिया।

फिर जब हसी की लहर उतर गई तो उसने प्रश्नसूचक दृष्टि से इन्दु बाबू की ओर देखा, मानो पूछ रहा हो, कोई गलत बात कही मैंने?

अमिता ही बोली: 'भाई साहब, दीदी ने आपको छका दिया, यह तरकारी नही है, मछली है।'

'अरे मछली ऐसी होती है,' अशोक ने अपनी झेंप मिटाते हुए उत्तर दिया, 'तब तो सचमुच बडी स्वादिष्ट होती है!'

इन्दु बाबू ने उसके पास रखी एक कटोरी की ओर इशारा करके कहा, 'जरा इसे भी तो चखिये, देखें आप पहचान पाते हैं या नहीं !'

अशोक ने कटोरी की ओर हाथ बढ़ाया, फिर जब उसे लगा कि सब सास रोके उसकी ओर देख रहे हैं तो उसने हाथ खींच लिया।

'खाइये, खाइये, रुके क्यों ? ऐसी कोई चीज़ नहीं है,' अमिता ने बड़ी सहज सादगी से कहा। अशोक के एक कौर मुह मे डालते ही मीना ताली बजाकर नाच उठी : 'मास्साब ने मास खा लिया !'

अशोक की हंसी देखते ही बनती थी !

अशोक ने मन ही मन कहा : 'उस दिन कैसा बेहिचक वातावरण था ! कहीं कोई कुण्ठा नहीं। सचमुच वैकुण्ठ !'

चार

'ज़रा उठो तो', वीणा बोली।

सूटकेस से शीशा-कंघा निकालकर अशोक उसी पर बैठकर बाल संवार रहा था।

'क्यों ?'

'यह सूटकेस ज़रा उस कमरे में पहुंचा दू, यहां बुरा लगेगा।'

वीरेन्द्र के ड्राइंगरूम को ही उन्होंने कुछ दिनों के लिए अपना लिविंग रूम, रहने का कमरा बना लिया था।

'अरे, छोड़ो भी यह सब झंझट! अमिता के लिए इस सब सरंजाम की क्या जरूरत ?'

'अच्छा, तुम रहने दो, हमारे सामने मत बोला करो ! और हां, तुम जाकर गेट पर खड़े हो जाओ, उसे कहीं घर ढूढ़ने में तकलीफ न हो !'

अशोक ने देखा : घड़ी में पौने पांच बजे थे।

बाल संवार चुककर अशोक ने शीशा-कंघा वापस सूटकेस के हवाले किये, 'लो बाबा', कहकर खड़ा हुआ और सिर के पिछले भाग पर हाथ

फेरता गेट पर जा पहुंचा।

'पापा, देखना यह ड्रेस ठीक है ?'

नन्हे संजय को वीणा ने नया सूट पहना दिया था, मानो किसी पर्व की तैयारी हो।

'वाह, वाह, तुम तो एकदम बोनापार्ट हो गए !' कहते हुए अशोक ने संजय को बाहे पकड़कर उठाया और हवा में दो बार झुलाने के बाद पुचकारकर जमीन पर खड़ा कर दिया। फिर उसकी पीठ थपथपाते हुए बोला : 'जाओ बेटा, भीतर जाओ, मम्मी के पास ?'

संजय मेमने की तरह फुदकता भीतर चला गया।

और अशोक ने गेट के फाटक पर अपनी दोनो कुहनिया टेककर अपनी नज़र सामने के रास्ते पर टिका दी।

कालेज-कम्पाउण्ड का फाटक सामने की बिल्डिग के उस ओर था, और प्रोफेसर्स क्वार्टर्स के लिए वहा से यहा तक सड़क बिल्डिंग की बगल से होकर आती थी। सड़क जहा से मुडती थी, उससे पहले का हिस्सा यहा से दिखाई नही देता था।

मध्य जून की वह प्रदोष-वेला असाधारण रूप से शान्त और सुनसान थी। हवा में कुछ थकान थी और कुछ उदासी ! जहा तक नज़र जाती, सूना मैदान, निर्जीव इमारतें और ऊघते पेड़।

सहसा अशोक की नज़र सड़क के उस पार टेनिस कोर्ट पर जा पड़ी। कुछ प्रोफेसर टेनिस खेल रहे थे, कुछ बैठे देख रहे थे। दो-तीन गोली ड्यूटी पर लगे थे।

वे ही रीतिवत् नीले परदे और सफेद ड्रेस ! रैकिट से जब गेंद टकराती तो अशोक के कानों तक हल्की-सी आवाज आती। या वह आवाज की निरी कल्पना कर रहा था ?

अशोक चकरा गया। क्यों, क्यों यह शाम उसे बस उसी एक बात की याद दिलाती है !

मुद्दतें गुज़र गईं उन कालेज के दिनों को, तब से अब तक वह न जाने कहां-कहां घूम चुका है। बम्बई के समुद्र-तट की शाम से लेकर

मसूरी की विलासिनी सन्ध्या तक—शाम को वह अनगिनती छवियों में देख चुका है, पर मन के परदे पर शाम का वही एक चित्र क्यों ऐसा स्थिर हो गया है ?

कैसा अजीब लगा था उसे जब उसने पहली बार बाबा को शर्ट और 'शोर्ट' नेकर में देखा था ! उसकी कलाई की वह घड़ी, जो साधारणतः कुरते की बाह में ढँकी रहती थी, कैसी साफ चमकने लगती थी ! और घुटनों तक निरावृत पैरों की वह नपी-तुली चाल, सिर्फ उसी वेश में उसका ध्यान आकर्षित कर पाती थी !

और बाद के दिनों में ?

बाद के दिनों में, अशोक को याद आया, वह अपने कमरे से साइकिल पर कालेज-कम्पाउण्ड पार करता टेनिस-कोर्ट तक आता, और अगर बाबा को टेनिस खेलते पाता तो फौरन साइकिल उनके घर की ओर मोड़ देता !

अभी तो बाबा को कम से कम पन्द्रह-बीस मिनट लगेंगे यह गेम, पूरा करने में । वह सोचता, तब तक मैं विमल से मिल आऊं !

विमल से ? सचमुच विमल से ही मिलने !

आज, इतने दिनों का व्यवधान बीच में खड़ा कर लेने पर भी, अशोक धड़कते दिल से ही सोच रहा है, विमल तो अक्सर अपने स्कूल में क्रिकेट खेलने जाता था ! वह तो यदा-कदा ही मिलता था !

कभी-कभी मीना भी मिल जाती थी, पैरों में घुघरू बाधे, प्रैक्टिस से थककर सुस्ताती हुई, लान में मूढे पर बैठी ।

हंसकर पूछती : 'कविता मिली ?'

यह उनका एक निजी विनोद था ।

अशोक ने अमिता के जन्म दिन पर भी कविताएँ लिखकर दी थी, और विमल के जन्म-दिन पर भी, पर मीना के जन्म दिन पर वह कोई-न-कोई उपहार ही देता था । कोई सुन्दर-सी, और बिसात के काफी बाहर की चीज़, ताकि मां अपनी दृष्टि में वात्सल्य-गर्व प्रशंसा की त्रिवेणी भरकर कहे : 'अशोक, तुम यह क्या फिजूलखर्च करते रहते हो ? एक गुलदस्ता

देने से ही तो चल जाता।'

पर उपहार पाकर भी मीना का मन असन्तुष्ट ही रहता।

'हमे भी आप दीदी की तरह कविता क्यों नही देते, मास्साब ?' वह मान से कह उठती।'

उसके बाल-हृदय को कविता में अपना नाम आना जादू ही मालूम देता था।

उस बार हारकर उसने कहा : 'अच्छी बात है, कल से अब मैं तुम्हारे लिए कविता ढूंढने जाया करूंगा। मिलते ही पकड़कर ले आऊँगा।'

कुछ अविश्वास और कुछ विनोद से मीना ने कहा था : 'प्रॉमिज़ ?'

'प्रॉमिज!'

तब से मीना उसे देखते ही पूछ बैठती . 'कविता मिली ?'

'ऊं हूं,' वह सिर झटककर कहता, 'थकान के मारे जान निकल गई। लाओ, पानी पिलाओ!'

और मीना फौरन आवाज़ लगाती, 'ठाकुर, एक गिलास पानी, मास्साब के लिए!'

और पानी की इस पुकर पर, अगर अमिता घर मे होती, तो बाहर निकल आती और कहती : 'नमस्कार, भाई साहब!'

और बातो का तार बंध जाता। अशोक हंस-हंसकर, घुल-घुलकर बाते करता रहता, और उसके दिल पर एक छाया उतरती आती, घड़ियां गिनती। दस-पन्द्रह मिनट बीतते-न बीतते वह बातों का तार बरबस तोड कर कम्पाउण्ड के बाहर होता, ओर पीछे लौटने के बजाय आगे जाकर अगले मोड से दूसरी सडक पकड़कर घर लौटता।

अशोक के हाथ कापे, जैसे वह साइकिल का हैण्डिल पकडे हो और अमिता के घर के गेट पर आकर कनखी से अपने बायें देख रहा हो, बाबा तो नहीं आ रहे है ?

अशोक का मन उदास हो गया।

चोरी ?— हां, यह चोरी तो थी ही।

क्यों करता था वह यह चोरी ?

रोज लौटते हुए वह ऐसा पुलकित होता था कि बस अब एक हफ्ते तक डटकर पढ़ूगा, कोई गफलत नही होगी, और फिर अगली ही शाम उसका मन उचट जाता, पुस्तक के शब्द अर्थहीन हो जाते, आखें धुधिया जाती, और वह ताजगी पाने के लिए साइकिल उठाकर चल देता।

एक धिक्कार अशोक के मन मे उभर आई।

क्यों, आखिर क्यों? किसलिए वह ऐसा करता था?

जैसे हवा में रगों की कोई वेल लहरा गई!

अशोक ने देखा, सड़क की मोड पर दो महिलाए प्रकट हुई!

धड-धड-धड-धड, अशोक का दिल धड़क रहा है। अमिता! हा, अमिता ही है! वह देखो न, वह उसका बाया हाथ कैसा झूल रहा है, ठीक जैसे कालेज के उस सर्पिल पथ पर झूलता रहता था। और दायें हाथ मे अपना पल्लू थामे वह अपनी साथिन से बतरा रही है! वही मुस्कान! हा, हा, बिल्कुल वही मुस्कान! यह मुस्कान क्या भूली जा सकती है!

और हालांकि वह अभी दूर है, काफी दूर—पर अशोक जैसे अभी मे देख पा रहा है, वे बडी-बडी काली आखें, जिनकी पलकों पर मानो भरे हुए बादल झुके हो!

अशोक को याद आया, अमिता और निर्मला अक्सर साथ-साथ आती-जाती थी। पडौस मे जो रहती थी। अमिता का हाथ झूलता रहता, निर्मला के 'बौब्ड' बाल कन्धो तक लहराते रहते।

प्रशान्त को उसने बताया था: 'मैंने इनकी जोड़ी का नाम रखा है: "कर-बाल।'

इस याद मे तलवार की-सी धार है। रुकना ही नही जानती!

जुलाई की वह गीली साझ, बादलो से लदी। अशोक पिता की इच्छा के खिलाफ कॉलेज में भरती हुआ था, स्कॉलरशिप के बल पर। उस दिन जब दाखिला हो गया, और फीस जमा कर दी, तो वह कुछ निश्चिन्त होकर शाम को सिविल लाइन्स की ओर निकल पड़ा था, घूमने!

मड़क पर कुछ दूर जाते ही उसने देखा, जैसे रूप-रंग की नुमाइश आ रही हो !

महीनों बाद जब क्लास मे 'पद्मावत' मे उसने पद्मिनी और उसकी सहेलियों के लिए जायसी की फुलवारी वाली उपमा पढी थी तो अनायास यही दृश्य उसने ग्रहण किया था, और वह उपमा उसे कितनी सजीव और सटीक लगी थी !

जब टोली कुछ पास आयी तो उसकी आखें क्रमशः एक लड़की पर ठहर गई—एक बाला पर, जिसका एक हाथ कुछ अनोखे ढंग से झूल रहा था, दूसरा हाथ पल्लू को समेटे था, जिसके ओठो से मुस्कान की फुहार झर रही थी, और जिसके पलकों पर वैसे ही भरे बादल लदे थे, जैसे सामने के आसमान मे !

'हसती है तो फूल झरते हैं', बाद मे एक बार अमिता को सगीत सिखाने वाले उस्ताद ने कहा था : 'मास्टर साहब, बोलती है तो जैसे मिश्री घोलती है !'

और हालाकि अशोक ने सोचा था कि आज हो-न-हो उस्ताद जरूर कुछ पिये हुए है, नही तो उससे ऐसी बाते करते, फिर भी वह मन ही मन उनसे सहमत हुए बिना न रह सका था, क्योकि पहले दिन ही उसने फूल भी झरते देखे थे और मिश्री भी घुलती देखी थी !

और जब वह टोली सडक पर उसके पास, बिलकुल उसके पास आ गई तो उन बड़ी-बडी काली आखो की पलको के वे भरे बादल मानो उसके मन मे उतर गए, मानो जी में रस की एक वर्षा हो गई !

और उसकी धडकन इतनी तेज हो गई थी कि खुद अपने ही कानों में उसकी आवाज ऐसी सुनाई पड़ती थी, जैसे कोई पहाडी झरना झर रहा हो।

पलभर की वह झलक अशोक को कितनी भली लगी थी ! कितनी मीठी ?

दो-तीन दिन बाद तब उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उसने कालेज की सीढियो पर वही हाथ झूलते देखा !

'अच्छा, तो यह इसी कालेज में पढ़ती है !' उसने प्रसन्न विस्मय से सोचा। और जब-तब पलकों के वे भरे बादल उसे भिगो जाते !

पर वह कौन है, किस ईयर में पढती है, यह जानने की अशोक ने जरा भी कोशिश न की थी।

'मैं तो पढ़ने आया हूं। मुझे फर्स्ट-क्लास पाना है, मुझे बडा बनना है, मुझे महान बनना है—भला मुझे लडकियो से मतलब ?'

उसने इस ख्याल को ही सदा के लिए झटक दिया था।

फिर उसने पाया था कि स्कॉलरशिप से खर्च नही चल पायेगा, हालांकि पैसे बचने के ख्याल से उसने कालेज के नियमित हॉस्टल मे रहने का लोभ छोड़कर शहर के एक तंग मुहल्ले में एक जर्जर-सा कमरा किराये पर ले लिया था।

इसलिए उसने विवश होकर प्रोफेसर कुमार से कोई ट्यूशन-कार्य दिलाने का निवेदन किया था।

पिताजी से मांगने की प्रवृत्ति ही न हुई। यही क्या कम है कि उन्होने पढने की अनुमति दे दी है, उसने सोचा था।

प्रोफेसर कुमार कालेज में हिन्दी पढाते थे, स्वय अच्छे लेखक थे, और अशोक की रचनाओं के प्रशंसक थे।

और तब हिन्दी का पीरियड खत्म होने पर एक दिन प्रोफेसर कुमार ने उसके हाथ पर पते की एक चिट रखी और बोले : 'आज शाम को साढ़े छ. बजे यहां चले जाइयेगा, काम मिल जायेगा। सातवें दर्जे का स्टूडेण्ट है, बड़ा ही सुशील, हिन्दी पढानी होगी। यू बिल लाइक इट !'

और जब ठीक समय पर वह सही पते पर पहुंचा तो बाहर ही नेमप्लेट लगी थी : प्रोफेसर प्रफुल्लचन्द्र मैत्र !

'पोर्च', ड्योढ़ी की दो सीढिया चढ़कर वह अन्दर दाखिल हुआ और चिक पड़े दरवाजे के पास लगी घण्टी बजाई।

अशोक के ओंठों पर हँसी खेल गई। हा, सचमुच उस दिन उसने घण्टी ही बजाई थी। बाद में तो वह भूल ही गया था कि उस घर में घण्टी भी लगी है।

ठाकुर ने आकर कहा था · 'कहिये ?'

अशोक क्या कहे, समझ ही न पाया। हार कर बोला: 'मैं पढ़ाने आया हूं।'

कैसा अजीब वाक्य था। कितना भोला था वह तब ! हाय रे अबोध बालक !

ठाकुर ने भीतर जाकर फिर लौट आकर कहा: 'प्रोफेसर साहब घूमने गए हैं, और खोका बाबू खेलने। अभी आते होंगे। तब तक आप बैठें।'

ठाकुर ने चिक उठा दी तो वह चुपचाप भीतर जाकर किनारे की एक कुर्सी पर अचक-पचक बैठ गया।

सूना कमरा, घिरती साझ, अनजानी जगह !

कैसा विचित्र क्षण था वह !

अचानक अशोक ने चूड़ियों की खनक सुनी !

आखें उठाई तो एक छाया-मूर्ति कमरे मे आकर स्विच बोर्ड तक बढ़ी और—खट् !

सारा कमरा जगमगा उठा।

उससे भी ज्यादा जगमगा उठा था उसका मन !

अरे, यह क्या ? वे ही भरे बादलो-लदी पलकें !!

'नमस्कार !'

'नमस्ते !'

वह क्षण अशोक के प्राणो पर आज भी कसौटी पर खिची सच्चे सोने की रेख की तरह लिखा हुआ है।

तभी जो चूड़ियों की खनक हुई तो अशोक चौंक उठा।

वीणा ने आकर पूछा: 'अभी तक नही आईं ?'

'वह आ रही है,' कहकर अशोक ने को सामने दृष्टि उठाई तो वह भभक हो गया।

'अरे !' उसके मुंह में और कुछ न निकला।

'क्या हुआ ?'

कुछ कहते-कहते अशोक ने अपने आपको समाल लिया।

'कुछ नहीं। आती ही होगी। पांच बजे दफ्तर से निकलने को कहा था। *आते-आते कुछ तो समय लगेगा ही।'*

'ठीक है, तो मैं अब चाय का पानी चढ़वा देती हूं।'

वीणा चली गई।

अशोक की आखें जैसे फटने को हो आईं। अभी, बिल्कुल अभी ही तो उसने उस मोड़ से अमिता और उसकी साथिन को इधर आते देखा था। इसी बीच वे किधर बिला गईं ?

तो क्या, तो क्या वह स्वप्न देख रहा था ? दिवा-स्वप्न ? इतना स्पष्ट, इतना ठोस, फिर भी स्वप्न !

अशोक को विश्वास करने में कुछ समय लगा। फिर अचानक वह जोर से हँस पड़ा।

'मैं भी कैसा पागल हूं', उसने अपने-आपसे कहा, 'वे दोनों तो बिल्कुल कालेज गर्ल लग रही थीं। और अमिता को कालेज छोड़े हुए युग बीत चुका। अमिता क्या अब भी वैसी ही बनी रही होगी ? जरूर उसे भ्रम हुआ, जरूर वे कोई और थीं जो इस कम्पाउण्ड में रहती होंगी !

और, उसने टीप का बन्द जोड़ा, और अमिता तो कार में आएगी ! मैं भी···वाह, यह भी एक ही रही !

वह फिर हँस पड़ा।

सर्र—से एक कार गेट पर आकर रुक गई।

पांच

अशोक ने आंखें उठाईं तो कार के 'स्टीयरिंग ह्वील' पर बैठी अमिता *मुस्करा रही थी, और उसकी बगल में बैठे थे कोई एक सज्जन !*

'मिस्टर मुकर्जी ?' अशोक ने सोचा, 'क्या ये मिस्टर मुकर्जी हैं ?'

अशोक का मन असमंजस में पड़ गया।

ये मिस्टर मुकर्जी जैसे तो नहीं लगते। यह ठीक है कि उसने मिस्टर मुकर्जी को सिर्फ एक-दो बार ही देखा है, सो भी बरसों पहले, पर उसकी याददाश्त इतनी खराब नहीं हो सकती कि पहचान ही न सके !

छोड़ो भी, पहले आगे बढ़कर स्वागत तो करो।

अशोक ने सोचा था कि वह अमिता को दूर से ही आते देख लेगा और फिर पहला वाक्य क्या कहना है यह तय कर लेगा। न जाने उसका स्वभाव कैसा है कि हर चीज़ की पहले से तैयारी कर लेना जरूरी होता है।

पर अमिता इतने अचानक आई कि एक वाक्य क्या, एक शब्द सोचने का भी उसे समय न मिला। विनम्र अभिवादन से हाथ जोड़े वह किंचित मुस्कराता हुआ कार की ओर बढ़ा।

अमिता और वह अपरिचित सज्जन इस बीच कार से उतरकर गेट की ओर चल पड़े थे।

'नमस्कार, आइए !'

'मीट माइ फ्रेण्ड एण्ड कुलीग मिस्टर एस॰सी॰ राय'''अशोक बाबू !'

अमिता ने एक-दूसरे का परिचय कराया।

'ग्लैड टू मीट यू' कहते हुए अशोक ने हाथ बढ़ा दिया।

शेक-हैण्ड हो जाने पर वह उनसे भी बोला . 'आइए।'

अपने इस आह्वान का उत्तर मिस्टर राय ने अशोक बाबू को न देकर अमिता को दिया : 'मैं अब चलूगा।'

'अच्छी बात है', अमिता ने कहा।

मिस्टर राय पैदल ही आगे बढ़ गए। अमिता गेट की ओर कदम रखती बोली : 'कहिए !'''वीणा कहां है ?'

'चलिए, अन्दर चलिए !'

अमिता आगे-आगे, अशोक पीछे-पीछे गेट के अन्दर प्रविष्ट हुए।

पोर्च तक आकर वीणा बोली : 'आइए, आइए !'

'हलो वीणा !' कहती हुई अमिता छूटकर आगे बढ़ी और उसने वीणा को बाहों में लपेट लिया। 'अच्छी हो।' 'हां' आदि प्रारम्भिक वार्तालाप हंसी के फव्वारे में भीग गया।

दोनों महिलाएं अन्दर चली गईं।

मिस्टर राय से हाथ मिलाते समय अशोक सोच रहा था : तो अमिता अकेली नहीं आई है, एक संगी लेकर आई है। इनके सामने क्या बातचीत हो सकेगी? यह मुलाकात तो बड़ी बेसुरी रहेगी। मिस्टर मुकर्जी होते तो भी एक बात थी। इससे तो न आती सो ही अच्छा था। हो सकता है, फोन पर जल्दबाजी में आने का वचन देने के बाद उसे लगा हो, कुछ ठीक नहीं हुआ, इसलिए मिस्टर राय को साथ ले लिया हो। अमिता ने जिस उत्साह से आने का वायदा किया था, उससे उसके भी तो कान खड़े हो गए थे।

और जब मिस्टर राय गेट पर ही विदा लेकर अमिता को अकेली छोड़ गए, तो एक आश्वस्ति के साथ-साथ अशोक को क्षणभर पहले की अपनी तर्कना पर ग्लानि हो आई। वह पिछड़ गया और गुमसुम हो गया।

वीणा और अमिता के अन्दर जाने के दो क्षण बाद अशोक ड्राइंग रूम में पहुंचा। तब तक वे दोनों एक ही सोफे पर बैठी घुल-मिल गई थीं।

'मिस्टर राय चले क्यों गए!'

कहते ही अशोक को अपना यह प्रश्न इतना बेहूदा लगा कि वह सकुचा गया। पर बात कही जा चुकी थी।

'अरे, वे तो यहीं पीछे ही रहते हैं, सेन्ट्रल गवर्नमेंट क्वार्टर्स में। मैंने कहा, आप तो जानते ही होंगे। 17 नम्बर प्रोफेसर्स क्वार्टर्स कहां होगा, ढूंढने में परेशानी नहीं होगी।' अमिता ने सहज भाव से कहा।

'ओ, आइ सी!'

अशोक कुछ खुला, कुछ ढीला भी पड़ा।

'क्यों, आपने क्या सोचा?'

स्पष्ट था कि अमिता के स्वर में चुलबुलाहट थी।

'नहीं, सोचा तो कुछ नहीं। मैंने कहा, साथ आए थे तो फिर एकदम...'

अमिता ने वाक्य पूरा नहीं करने दिया। हंसती हुई बोली : 'मैंने कहा न, बीस बरस हो गए फिर भी अक्ल नहीं आई। बिल्कुल वैसे ही हैं, जैसे तब थे।'

'यू वाण्टेड मी टू चेन्ज?'

'नहीं, आइ ओन्ली फीयर्ड यू माइट हैव चेन्ज्ड। मैं तो सिर्फ डरती थी कि आप कहीं बदल न गए हों।'

'ह्वाई ?'

'क्योंकि परिवर्तन स्वाभाविक है।'

'तो क्या मैंने तुम्हें निराश किया ?' अशोक ने पूछा।

'आप दोनों शायद यह भूल गए हैं,' वीणा ने प्रकट रूप से हस्तक्षेप करते हुए कहा, 'कि मैं भी यहाँ हूं।' कहकर वीणा ने एक ठहाका लगाया।

'ये तो हमेशा के भुलक्कड़ हैं। किसी बात का होश ही नहीं रहता।' अमिता ने हंसकर जोड़ा।

'अगर आपकी यह राय मेरे दफ्तर वालों तक पहुंच जाए तो मैं तो कहीं का न रहूं।' अशोक बोला।

'यह दफ्तर है या आफत ! बात-बात में आपकी ज़ुबान पर आता रहता है', अमिता बोली, 'भई वीणा, मुझे अपनी राय थोड़ी बदलनी पड़ी। दफ्तर का होश तो इन्हें जरूरत से ज्यादा रहता है।'

'वही तो मुश्किल है', वीणा ने हंसते हुए कहा : 'गलत चीजों का ही होश रहता है।'

'वाह, तुमने तो मेरे मन की बात कह दी।' अमिता ने खिलकर कहा।

'चलिए, आपने कुछ तो स्वीकार किया। मेरे लिए यही बहुत है।' अशोक ने कुछ हारे हुए के-से अन्दाज में कहा।

एक क्षण कमरे में शान्ति रही, जैसे कोई थककर सांस लेने लगे।

अशोक ने लक्ष्य किया कि यह हंसीपूर्ण बातचीत एक युक्ति-सी सिद्ध हुई है, अचानक भेंट की असाधारणता को घटाने के लिए। और उसने महसूस किया कि उसका अपना मन सहज होकर वर्तमान में लौट आया है। कुछ देर के लिए उसकी चेतना पर छाए याद के जाले जैसे बिला गए हों, और वह दैनन्दिन जीवन की सहज गति में मिल गई हो।

'बच्चे कहां हैं ?' अमिता ने चारों ओर नजर डालते हुए कहा।

'कविता !' वीणा ने आवाज दी।

कविता दरवाज़े की ओट मे खड़ी होकर परदे की सन्ध मे से झांक रही थी। उसकी आंखें खुशी प्रगट कर रही थी, पर उसे कमरे मे आने में शर्म लग रही थी।

'कविता ! संजय !!' इस बार अशोक ने पुकारा।

'क्या पापा ?' कहते हुए सजय दौडता हुआ आकर अशोक से लिपट गया।

'आण्टी हैं। नमस्ते करो।' अमिता की ओर इशारा करते हुए अशोक बोला।

'वीणा ने सजय को मिलिटरी कप्तानो की-सी टोपी पहना दी थी और वह हाथ मे खिलौना-बन्दूक लिए था, जो उन्होंने कल न्यू मार्केट से खरीदी थी।

सजय ने बड़े आडम्बर से अमिता को मिलिटरी सैल्यूट किया।

'वाह, वाह, एकदम गार्ड ऑफ ऑनर !' अमिता ने गर्व से कहा, और वांह पकड़कर संजय को खीचते हुए गोद में भर लिया।

फिर उसे प्यार करती हुई बोली : 'बडा प्यारा बच्चा है !' और अशोक की ओर नटखटपन से देखते हुए पूछा : 'यही है न आपका महाकाव्य ?'

अशोक मुस्कराया, 'कही कोई याद का तार जैसे झनझनाया हो !'

फिर हसते हुए बोला : 'जी नही, महाकाव्य मे अभी देर है। यह तो इनका शोध-प्रबन्ध समझिए !' कहते हुए उसने वीणा की ओर संकेत किया।

'अरे ! प्रसन्न आश्चर्य से अमिता ने कहा : 'तो क्या तुमने डाक्टरेट कर ली ?'

'जी हा', अशोक बोल पड़ा : 'और यही नही, अब तो ये लेक्चरर भी हो गई है। डा० वीणा गुप्त, 'लेक्चरर इन हिन्दी लिटरेचर ! मज़ाक थोड़े ही है !'

'और मुझे खबर तक न दी ?' अमिता ने शिकायत की।

'आप हमारी खबर लेती ही कहा है ?' अशोक ने हताशा का अभिनय किया।

'मैंने तो आपकी वह खबर ली है कि जनम-भर याद रखिएगा।'

अमिता ने तपाक से कहा, और फिर वीणा का हाथ थामकर बोली : 'कांग्रेचुलेशन्स ! सच, मुझे बडी खुशी हुई ।'

फिर कुछ रुक कर कहा : 'आइ होप, आयम नाट वेरी लेट ?'

'बिल्कुल नहीं', वीणा बोली, 'अभी तो एक महीना भी नही हुआ रिजल्ट मिले ।'

'तब तो अब तुम रोज कालेज जाती होगी ?'

'अभी कहा, अभी तो एपाइण्टमेण्ट हुआ है । अब जाऊंगी इस जुलाई से ।'

'तो फिर हमारी मिठाई !'

'वही तो खिलाने आए है तुम्हें इतनी दूर से ?' अशोक ने जवाब दिया ।

'चलिए, रहने भी दीजिए, यह मुंहदेखी बात है ।'

'नहीं, नहीं, वीणा ने कहा, ये ठीक कह रहे है । इन्हे तो खैर दफ्तर के काम से आना था, पर मैं इनके साथ यही सोचकर आई थी कि एक तो थोड़ी थकान उतर जाएगी, दूसरे तुमसे मुलाकात हो जाएगी ।'

'और इसीलिए आने के ठीक तीन दिन बाद खबर ली ! पहले खबर देती तो शायद थकान न उतरती ?' अमिता ने कुछ अतिरिक्त बल देकर ही शिकायत की ।

'मैं तो इन्हें रोज कहती थी, पर··· !'

अशोक बीच में ही बोल पड़ा, 'क्या करूं, अमिता, काम में ऐसा उलझा रहा कि समय ही न मिला । फिर, तुम जानती हो, मैंने जिन्दगी के कई महत्वपूर्ण वर्ष यहा बिताए है । सभी से मिलने की इच्छा थी ।'

'यानी मित्रों की सूची मे मेरा नाम आपने अन्त मे रख छोड़ा है !'

'शास्त्र का वचन है न · मधुरेण समापयेत !'

'बस रहने दीजिए, शास्त्री जी महाराज ! बड़े आए शास्त्र का वचन मानने वाले ।···तुम न होती वीणा, तो ये शायद बिना मिले ही चले जाते ।'

'वाह, वाह, ऐसा कैसे हो सकता था ?'

'क्यों ? पिछली बार कैसे हुआ था ?'

'ओह, वह ! मैंने लिखा था न तुम्हें ! कई बार फोन पर काण्टेक्ट करने की कोशिश की पर बात ही न हो पाई।'

'क्यों फिजूल झूठ बोलते हैं। मेरे दफ्तर में तीन-तीन डाइरेक्ट लाइनें हैं और घर पर फोन है, सो अलग ? और आप हैं कि काण्टेक्ट ही नहीं कर पाए !' अमिता ने कुछ रूठते हुए कहा।

'होगा। मुझे तो हमेशा एन्गेज्ड ही मिला।' अशोक ने लक्ष्य किया कि उसके वाक्य में कुछ और अर्थ भी समा गया है।

'यह कहिए कि फोन करने का होश ही न रहा। कवि जो ठहरे।'

'तुम तो ऐसे कह रही हो जैसे कवि बुद्धू होते है।'

'बुद्धू तो फिर भी अच्छे', अमिता दबी नहीं, 'सिर्फ अपना ही नुकसान करते है।'

फिर स्वर बदल कर बोली, 'अच्छा छोड़िए, लाइए पैसे निकालिए ?'

'पैसे ? कैसे पैसे ?'

'पैट्रोल के। मैंने फोन पर बताया था न !'

'देखो वीणा, ज्यादती देखो ! इतनी दूर से ट्रेन-भाड़ा खर्च करके आएं, मिठाई खिलाए और ऊपर से पैट्रोल के पैसे भी दें।'

अशोक ने ऐसा भाव दिखाया जैसे उस पर बहुत बड़ा अन्याय हो रहा हो।

'पता नहीं भई, इनकी ज्यादती है या तुम ज्यादती कर रहे हो', कह कर वीणा हसती हुई अन्दर गई और कविता को घसीट कर लाती हुई बोली, 'यह है कविता। न जाने तुमसे क्यों शरमा रही है, समझ में ही नहीं आता !'

'कवि जी की कविता जो ठहरी, कहते हुए अमिता ने अपनी बांह फैलाकर कहा : 'यहा आओ, बेटी !'

सहमती-सकुचाती कविता अमिता के पास जाकर खड़ी हो गई, और दोनो हाथ जोड़कर धीमे से बोली : 'नमस्ते !'

'नमस्ते ! अरे, तुम तो इतनी बड़ी हो गई। यही है न वीणा, जो लखनऊ में इतनी-सी थी ?'

'हा', वीणा ने उत्तर दिया।

अमिता ने कविता को खीच कर अपने कन्धे से लगाया और पूछा, 'पहचानती हो मुझे ?'

कविता बोली नही, सिर्फ सिर हिलाकर बताया : 'नही !'

'शरमाती हो, क्यो ?'

कविता चुप !

अमिता ने वीणा की ओर देखकर कहा : 'पढती है न ?' फिर कविता से पूछा 'किस क्लास मे पढती हो ?'

'सेविन्थ (सातवे) मे !'

'शाबाश', अमिता ने उसकी पीठ थपथपाई, 'गुड गर्ल !'

'क्लास में फर्स्ट आती है।' अशोक ने पितृसुलभ गर्व से बतलाया।

'सो तो आएगी ही', अमिता ने सहज भाव से कहा, फिर कविता से पूछा : 'और क्या सीखती हो ? गाना ?'

कविता ने सिर हिलाकर बताया नही !

'डान्स ?'

कविता ने सिर हिलाकर हामी भरी।

'इस बार आल इंडिया कम्पिटीशन में फर्स्ट प्राइज़ मिला है', वीणा ने सूचना दी।

'क्यों न हो, बड़े बाप की बेटी जो है !' अमिता ने कहा।

'क्यों, बडा कैसे ?' अशोक ने आश्चर्य प्रकट किया।

'बडे अफसर, बड़े लेखक—और बडे कैसे होते है ?' अमिता ने पलटकर कहा।

'ठीक है भई, तुम भी हंसी उडा लो—और तो उड़ाते ही हैं।' अशोक के स्वर मे न जाने कहां की दीनता थी।

'इसमें हंसी की क्या बात है ! मैं तो फैक्ट कह रही हू।'

'अच्छा, ये बातें तो होती रहेगी', वीणा ने कहा, 'सीधी दफ्तर से आई हो, थकी होगी, चलो, हाथ-मुह धो लो, फिर चाय पी लो।'

'गुड आइडिया।' कहती हुई अमिता वीणा के साथ भीतर चली गई। अशोक उन दोनों पर एक मुग्ध दृष्टि डालता रह गया।

सूने कमरे में घड़ी की टिक-टिक सुनाई देने लगी।

अशोक को अपना मन अचानक बडा खाली-खाली-सा लग रहा है। अभी कुछ क्षण पहले तक की उसकी हलचल उसे स्वय बड़ी विचित्र, बड़ी पराई-सी लग रही है। शान्ति और निर्वेद के इस आत्मीय सुख-क्षण मे उसे अपने उस उद्वेलन पर हंसी आ रही है। जैसे नदी की उमड़ती लहरें अमिता के आगमन के जादू से उतरकर कल-कल करने लग रही हो। उनके वे भीषण थपेड़े और प्रबल हाहाकार अब बासुरी की कोमल मीठी तान बन गए हों।

सहसा उसने सिर उठाकर चारो ओर देखा, और मन ही मन कहा : 'वीरेन्द्र कहा है ?'

उठकर बरामदे में गया तो वीणा डाइनिंग टेबिल पर प्लेटें लगा रही थी। उसने पूछा . 'वीरेन्द्र कहा है ?'

'यही होंगे, अभी तो यहीं थे', कहती हुई वीणा रसोई में चली गई।

अशोक ने आवाज लगाई : 'कविता।'

कविता दौड़ती हुई आई, बोली : 'क्या पापा ?'

'चाचाजी कहा हैं ?'

'मालूम नहीं।'

'देख तो, कही बगल मे वर्मा जी के यहा न बैठे हों !'

आधा घण्टा पहले वीरेन्द्र से उसने जो कठोर वाक्य कहे थे, वे अब अशोक के मन मे ऐसे बज रहे थे जैसे लोहे के घन की चोटें। और उसका तप्त मन फैलता जा रहा था।

थोड़ी देर में कविता के साथ वीरेन्द्र ने प्रवेश किया।

और उसी क्षण बाथरूम की चटखनी खुली और प्रकट हुई अमिता। सद्यः प्रसाधन से उसका रूप और भी खिल उठा था।

अशोक ने बेझिझक परिचय कराया : 'मेरे मित्र, वीरेन्द्र···श्रीमती अमिता मुकर्जी। निश्चय ही आप एक-दूसरे के बारे में सुन चुके है।'

पहले अमिता ही बोली : 'सुन ही नही चुकी हूं, नाराज भी हो चुकी हूं।'

वीरेन्द्र ऐसा दीख रहा था जैसे सोच रहा हो कि इस वाक्य पर उसके

चेहरे पर कौन-सा भाव आना चाहिए। आश्चर्य का, कष्ट का, या विशुद्ध विनोद का! इसलिए वह सिर्फ इतना ही कह सका : 'सो क्यों ?'

'कहावत है न', अमिता हंसकर बोली : 'आसमान से गिरे तो खजूर में अटके। आप वही खजूर हैं। न आप यहा कलकत्ते में होते न अशोक बाबू यहा अटकते।'

'ओह, यह बात है !' वीरेन्द्र का असमंजस कट गया और वह विशुद्ध विनोद की मुद्रा में आ गया। 'तो आप क्या हैं, धरती ? तब तो मेरा और आपका बडा घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए।'

और तीनों की सम्मिलित हसी सुनकर वीणा भी रसोई से बाहर निकल आई।

'माफ करें अमिता जी, आपने पहचानने में थोडी भूल की है। लीजिए असली खजूर के दर्शन कीजिए।' कहकर वीरेन्द्र ने वीणा की ओर सकेत किया, मानो कोई जादूगर जादू का खेल दिखा रहा हो।

अमिता हसी मे फूट पड़ी। अशोक के कान लाल हो गए।

वीणा बोली : 'मैं कवि नही हू भाई, उपमा और रूपक मेरे बस के नही। ज़रा अभिधा मे बात कीजिए न।'

'मैंने तो सीधी-सी ही बात कही थी। उसे रूपक का रूप तो वीरेन्द्र जी ने ही दिया है।' अमिता ने इस ढग से कहा जैसे अपनी सफाई दे रही हो।

'क्यो भाई, क्या आप भी कवि हैं ?' वीणा ने वीरेन्द्र की ओर देखते हुए हंसकर प्रश्न किया।

'अब तक तो नही था। पर अब लगता है, शायद हो जाऊं !' वीरेन्द्र ने आखें चमकाते हुए कहा।

'सो क्यो ?' वीणा ने पूछा।

'अब तक कवियों के उदगार पर विश्वास न कर यह मान बैठा था कि कवि लोग सदा दुर्भाग्य और अभाव से ही घिरे रहते हैं। पर आज पता चला है कि कविता के पीछे कितना सुन्दर रहस्य छिपा रहता है।'

अशोक को वीरेन्द्र की वाचालता बुरी लग रही थी पर न जाने क्यों,

कुछ कहना भी उसे उसमें भाग लेने जैसा लग रहा था। वह चुपचाप कभी उसकी ओर और कभी अमिता की ओर देखता रहा।

'पर कविता की प्रेरणा कहा से लाइएगा ?' अमिता ने प्रश्न किया।

'कब किसको कहां से प्रेरणा मिलती है, यह कौन कह सकता है।' वीरेन्द्र ने उसी भाव से उत्तर दिया।

'अच्छा, यह जटिल चर्चा छोडिए, आइए, चाय पी लीजिए ?' वीणा ने तीनो की ओर देखते हुए कहा।

चारों जने डाइनिंग टेबिल पर बैठ गए।

अशोक ने लक्ष्य किया कि अमिता अपने-आपको मेहमान की स्थिति मे नही रखना चाहती। परोसने का काम वीणा से भी ज्यादा वही कर रही है। वह उसके नाजुक हाथों को चलता देखता हुआ अचल भाव से बैठा रहा, पर उसका मन न जाने कहा था।

उस दिन जब वह विमल को पढा रहा था तो अचानक ठाकुर ने आकर कहा था :'मास्साब, जब पढ़ा चुकें तो जाइएगा मत। मा जी ने रुकने को बोला है।'

'आल राइट।'

और जब पढाना खत्म हो गया तो उसने विमल से कहा : 'ज़रा पता तो करो, मां ने रुकने को क्यों कहा था ?'

'अभी लीजिए', कहकर विमल अन्दर चला गया था।

थोडी देर में ही वह लौटकर आया, और बोला : 'आइए !'

अशोक कुछ सहमा-सा ही अन्दर गया था। उसने सोचा था, हो न हो, उससे पढ़ाई में कोई चूक हुई है जिसके बारे मे मां बात करना चाहती हैं।

विमल, पर, उसे डाइनिंग रूम में ले गया।

डाइनिंग टेबिल के पास खड़ी थी अमिता।

'मा ने आज कुछ मिठाई बनाई है। थोड़ी-सी आप भी चखिए !'

'वाह, वाह !' कहकर वह बैठ गया था।

हा, हां ये ही हैं वे उंगलियां ! इन्ही कोमल हाथों ने उस दिन भी उसे

परोसा था।

और हां, उन्ही दिनों उसने एक कविता में इन उंगलियों का जिक्र किया था, जो, कवि को लगा था, मानो उसका भविष्य-पट बुन रही हों!

उस दिन का भविष्य, आज का वर्तमान बन चुका है।

तो क्या उसका यह वर्तमान इन्ही उंगलियों ने बुना है?

अचानक उसने सुना : 'अजी, कवि जी महाराज!'

अशोक ने आखें फैलाते हुए कहा : 'क्या?'

'चीनी दो चम्मच, या और?' अमिता ने पूछा।

'नही, ठीक है।' उसने अनमने भाव से उत्तर दिया।

'क्या बात है, किस सोच मे डूबे है? कोई नई कविता सूझ गई?' अमिता ने पूछा।

'नही तो', कहते हुए अशोक जैसे कुर्सी पर और ठीक से बैठ गया।

'कुछ तो ज़रूर है। बताइए न, क्या बात है?'

'अरे, वह कुछ नही। बस यों ही।'

'नही, आपको बतानी होगी।'

'सुनकर तुम हंसोगी। बात यह है, मैं सोच रहा था, अभी रिजर्वेशन चेन्ज कराने जाना है।'

'बस, इत्ती-सी बात!' अमिता ने हलके होकर कहा, 'उसकी आप चिन्ता मत कीजिए। मैं कल अपने दफ्तर से सब ठीक करा दूंगी।'

'थैंक यू!'

'लेकिन, कल आपका जाना क्या बहुत ज़रूरी है?'

'जाना तो आज ही था। पर अब आपने रोक लिया है तो कल जाएंगे।'

'एक दिन और रुकिए न! अभी तो मुकर्जी साहब से भी भेंट नही की।'

'नही अमिता, अब रुकना सम्भव नही है।'

'आपकी बात का क्या भरोसा!' कहकर अमिता हंसी और वीणा से बोली : 'क्यों वीणा, ये ठीक कह रहे हैं? कल नही रुक सकते?'

'नही अमिता, अब गुंजाइश नही है।'

'तुम कहती हो तो माने लेती हूं', अमिता ने सहज भाव से कहा : 'पर यह बात कुछ जमी नही।'

'क्या करें, मजबूरी है।' अशोक बोला।

'ना बाबा, मुझे बीच में मत डालो! तुम जानो और तुम्हारा काम जाने। अभी तो खजूर ही बनाया है, अब न जाने और क्या-क्या बनना पडे। आप इन्हें शौक से ले जा सकती हैं, अमिता जी!'

'नही अमिता, यह तो मुश्किल है।' वीणा ने कहा।

'क्यों भला?'

'तुम्ही सोच लो, अभी सारा सामान पैक करना है। फिर तुम्हारे यहा अनपैक करें, और फिर कल ही पैक करना पडेगा, बडी झंझट हो जाएगी। और कल सुबह जरा शारदा के यहां भी जाना। वह बहुत बुरा मान रही थी, कह रही थी, फोन पर मुलाकात कोई मुलाकात नही होती।'

'अच्छा, तो यों ही सही। पर आज सगीत-सम्मेलन में तो चलो।'

'भाई, संगीत से मुझे प्रेम तो ज़रूर है,' वीणा ने कहा, 'पर अब बच्चों को छोड़कर कहा जाऊ! और बच्चों को ले चलें तो हर पाच मिनट पर उठने की मचाएगे। रहने ही दो अमिता।'

'और अशोक बाबू, आप!'

'मैं तो भई, बहुत थक गया हूं, माफी चाहता हूं।'

'और आज अगर सफर करना पड़ता तो?'

'उसी की तो थकान है। आज सफर की सारी तैयारियां कर ली थी। अब अचानक जाना कैंसिल हो गया तो न जाने क्यों, बड़ी अजीब-सी थकान लग रही है। सोना चाहता हूं।'

'बिलकुल कवियों-जैसी बात है।' अमिता ने हंसकर कहा, फिर जोड़ा : 'अच्छा, तो यह रहे। कल शाम को मैं इसी टाइम पर आप सब लोगों को अपने घर ले जाऊंगी। फिर वहीं चाय के बाद आपको स्टेशन पहुंचा दूंगी।'

'हा, यह प्लान ठीक है', वीणा ने उत्साह से कहा : 'इसमें सामान को

दुबारा पैक करने की झंझट भी बच जाएगी, और सवेरे शारदा के यहां भी हो आएंगे।'

'कल मुकर्जी साहब भी फ्री रहेंगे।' अमिता बोली : 'तो फिर ठीक ?'

'ठीक है।' अशोक ने कहा।

छः

अमिता जाने के लिए ड्राइंग रूम से बाहर बरामदे में आई और बोली : 'अच्छा, तो अब चलूं।'

वीणा साथ ही थी, बोली : 'ऐसी भी जल्दी क्या थी ! अभी तो बिलकुल भी मन नहीं भरा !'

'जाने का मन तो मेरा भी नहीं हो रहा है', अमिता ने कहा : 'पर क्या करूं, टाइम ही नहीं है। अभी डलहौजी स्क्वायर से मुकर्जी साहब को लेकर घर जाना है, फिर वहां से म्यूजिक कान्फ्रेंस ! पर अभी तो तुम कल घर आ रही हो, तब डटकर बातें करेंगे।'

'अशोक पीछे था, और उसके भी पीछे वीरेन्द्र ! अमिता ने मुड़कर दोनों को हाथ जोड़कर नमस्कार किया। वीरेन्द्र ने भी हाथ जोड़ दिए !

गेट पर आकर वीणा ने पूछा : 'कल पांच बजे ! है न !'

'ठीक पांच बजे। मैं दफ्तर से कुछ जल्दी ही निकल पड़ूंगी। तुम लोग बिलकुल तैयार रहना।'

'मैं तो तैयार रहूंगी। देर तो अशोक बाबू ही लगाते हैं।'

'कल देर लगाई तो फिर देखना।'

'क्या करोगी ?' अशोक ने पूछा।

'पहले से नहीं बताऊंगी, नहीं तो आप सावधान हो जाएंगे।' कहकर हंसती हुई अमिता कार की ओर बढ़ी।

वीणा और वीरेन्द्र गेट पर ही खड़े रहे। अशोक कार तक बढ़ आया।

'सचमुच नही चल सकते म्यूजिक कान्फ्रेंस में ?'

'चलना तो बहुत चाहता था, पर क्या करूं अमिता, मन नही हो रहा। बडी थकान लग रही है।'

'और अगर रिज़र्वेशन के लिए जाना पडता तब !'

'वह तो हारकर झख मारकर जाता। वैसे तो अब भी चल सकता हूं। पर उसमें मजा नही आएगा।'

'देख लिया आपका सगीत-प्रेम !' अमिता ने नाराज होने का अभिनय किया और गाड़ी स्टार्ट कर दी।

कार घुमाकर एक हाथ मे 'स्टीयरिंग ह्वील' सम्भालते हुए अमिता ने दूसरे हाथ से विदा का सकेत किया और मुस्कराती हुई चली गई।

वीणा और वीरेन्द्र अन्दर लौट पड़े। अशोक पीछे-पीछे चल रहा था।

गेट पर आकर अशोक मुड़ा और सर्पिल पथ पर दौडती हुई कार को देखने लगा। मोड पर अमिता ने फिर एक बार मुड़कर हाथ हिलाया, उसकी विकसित मुस्कराहट दिखाई दी, और गाडी आंखो से ओझल हो गई।

अशोक ने गेट बन्द किया और उस पर दोनों कोहनिया टेककर दूर मोड़ पर टकटकी लगाए रहा।

पर वह देख नही रहा है, वह सोच रहा है।

अभी, कुछ देर पहले, जब उसने अमिता से बातें करने के लिए फोन किया था तो उसके हाथ कैसे काप रहे थे, मन कैसा हिचक रहा था, मानो वह किसी विस्मृत अतीत मे झाक रहा हो, मानो किसी अपरिचित को पुकार रहा हो। जब से कलकत्ते आए थे, तभी से वीणा कह रही थी, अमिता को फोन करो, और अपनी इस हिचकिचाहट के मारे वह टालता आ रहा था। विवश होकर ही उसने फोन किया था कलकत्ता छोड़ने के कुछ घण्टे पहले।

और कुछ ही देर मे यह क्या हो गया। अमिता ऐसे आई जैसे गंध का एक झोंका, अतीत को जीवित कर वर्तमान बनाती हुई, और उसके जाने का प्रोग्राम तक बदल डाला !

अब ?

क्या करे वह इस एक दिन का, जो मानो कैलेण्डर का एक ऐसा पन्ना हो जिस पर तारीख छपने से रह गई हो !

अशोक को यान नही, अपने जीवन मे इधर कभी कोई दिन ऐसा खाली लगा हो, ऐसा फालतू ! दफ्तर की नियम-रीति से बधा वह आदी है कि दिनों के उपयोग को पहले से निश्चित कर ले, और शक्ति-भर उस निश्चय को पूरा करे। पर कल पाच बजे तक, जब अमिता आकर उन्हें अपने घर ले जाएगी, तब तक वह क्या करे ?

सोच मे डूबा, सिर झुकाए हुए, धीमे कदमो से वह अन्दर पहुचा।

'भाई कुछ भी कहो, आपकी अमिता जी हैं बड़ी हसमुख !' वीरेन्द्र ने कहा।

'हू।' अशोक ने जैसे वार्तालाप पर पूर्ण विराम लगाया।

'और कितनी कुशाग्र ! तुमने देखा, हाजिरजवाबी मे किसी से कम नहीं।' वीरेन्द्र उत्साह मे कहने लगा।

'हू !' अशोक ने दुहराया।

'मुझको तो सच, बहुत ही अच्छी लगी तुम्हारी अमिता जी !' वीरेन्द्र ने आखिरी प्रयास किया।

'हूं !' अशोक को एक-एक शब्द अखर रहा था।'

'क्या बात है ? इतने गुमसुम क्यो हो।'

'कोई खास बात नही, अशोक को बोलना ही पडा : 'सिर में दर्द है, आराम करना चाहता हू।'

कहकर वह दीवान पर निढाल हो गया।

वीरेन्द्र ने दो-एक क्षण इधर-उधर देखा, फिर चुपके-चुपके कमरे मे बाहर हो गया।

सुनसान, सुन्न !

अशोक को लगता है जैसे सारे शब्द समाप्त हो गए हैं, भारी गति रुक गई है।

मन मे देखना भी चाहता है, और देखने में दर्द भी होता है। जैसे कोई डाक्टर रोगी की चीख सुनकर घाव पर से फाहा हटाते-हटाते अपना हाथ दूर कर ले। ऐसे वह मन में झांकने से विरत होना चाहता है।

पर यह दर्द तो वीरेन्द्र नही है, जो इशारा करते ही बाहर चला जाएगा।

कब तक वह इसकी अनदेखी करेगा? कब तक हिचकेगा?

तो क्या···तो क्या उसकी सारी हिचक, सारा असमजस, सारी कप-कंपी दर्द से बचने की चेष्टा है? कि कहीं फाहा हट न जाए, कि कही घाव न दिखाई पडने लगे?

नही, नही, यह सब वह क्या सोच रहा है! दर्द? कैसा दर्द!

अमिता आई थी!

हा, अमिता आई थी, और वह चली भी गई।

तो क्या हुआ?

कुछ भी नही। कुछ भी तो नही हुआ। न भूचाल आया, न सास रुकी, न उसकी घिग्घी बंधी। देखा नही तुमने, सब कुछ कितना सहज, कितना साधारण बन गया था? वही हास-परिहास और विनोद, बड़ी चुहल और छेड़छाड़, और दक्षिणा मे एक मुलाकात का वायदा! इसमे सोचने को है ही क्या!

सचमुच कुछ नही?

हा, कुछ नहीं। मैं कहता हूं, कुछ भी नही।

फिर यो सुस्त और समाप्त क्यों पड़े हो? उठो न, चलो-फिरो, बातें करो, दो घण्टे पहले तक जैसे थे, वैसे ही क्यो नही हो जाते?

दर्द!

कहा, सिर में?

सिर मे जैसे तूफान भर गया है—तूफान जो उसे पालहीन डोंगे की तरह चक्कर खिला रहा हो झिंझोड़े डाल रहा हो और गन्तव्य से दूर, पीछे, न जाने किस पूर्व तट की ओर खीच रहा हो। नहीं, वह पीछे नहीं लौटेगा—वह सास रोके प्रतीक्षा करेगा कि तूफान अपना जोर-शोर दिखा कर, अपना दम चुकाकर थम जाए, लहरें फिर कल-कल करने लगें, और

वह फिर आगे बढ़े गाता-मुस्कराता, जैसे अब तक बढता आया है !

पर तूफान थमने के पहले ही दम घुट गया तो ?

'आइ ओनली फ़ीयर्ड, यू माइट हैव चेन्ज्ड ! मुझे तो डर था, कही आप बदल न गए हो !' अमिता ने कहा था ।

क्यो, पर क्यो ? बदलने को था ही क्या ? मैं क्यो बदलू ? मैंने ऐसा किया ही क्या है ? मैंने तो कुछ नही किया । कुछ भी नही । मुझे गर्व है, मैं जैसा था, वैसा ही हू । बदले तो बाबा थे । बदली तो तुम थी !

अशोक चौंका ! आज तो नही लगा कि अमिता रचमात्र भी बदली है ! वही मुस्कान, वही निश्छल परिहास, वही गहन अपनाव ।

फिर यह दर्द क्यो ?

खोलो, खोलो —मन की यह पुस्तक और कब तक बन्द रखोगे ! कांपो मत, धीमे हाथो से एक-एक पृष्ठ पढ़ो, पलटो—शायद इस दर्द का राज हाथ आ जाए, शायद···

हाथ काप रहे है, किताब गिरी जा रही है, पन्ने बार-बार मिल जाते है, पर अशोक अब और नही टालेगा, यह त्रास, आच्छादन की यह यत्रणा क्या उद्‌घाटन के दर्द से कुछ कम है ?

कापो मत !

एक सास छोडते हुए अशोक ने आखे खोली । खिडकी से कालेज की बिल्डिग के बगल का वह मोड दिख रहा था जहा अमिता ने कार मे से उसे हाथ हिलाकर बिदा ली थी, और वह फैलती मुस्कान !

कैसा विचित्र सयोग था कि घोष साहब के घर उसका पदार्पण इसी मुस्कान की छाया मे हुआ था । काश, यह न होता, काश उस दिन विमल घर पर होता, या बाबा ही होते, तो क्या इतिहास यही होता ?

नही ! एक क्षण—एक क्षण सारे जीवन को इतनी दूर तक प्रभावित कर सकता है ।

पर रुको !

क्या सच, इतिहास कुछ और होता ?

क्या सचमुच इस सयोग पर ही सब कुछ आधारित था ? तुम, बाबा,

'सिखाने से थोड़े ही आती है ?'

'तो फिर ?'

'आप कविता पढ़ती रहा करें ! कभी-न-कभी अपने-आप आ जाएगी।'

'हां, यह ठीक है। मैं कल से ही कविता पढ़ना शुरू करूंगी। पर •• एक मुश्किल है।'

'क्या ?'

'हमारे यहां हिन्दी की किताबें बहुत कम हैं।'

'पर बंगला की किताबें तो हैं। आपको तो बंगला में ही कविता करनी चाहिए।'

'नहीं, मैं हिन्दी में ही कविता करना चाहती हूं।'

'क्यों ?'

'मुझे हिन्दी अच्छी लगती है।'

'और मुझे बंगला।'

'अरे, तो क्या बंगला आपको आती है ?'

'आती तो नहीं। पर विमल बाबू से सीख लूंगा।'

'वह क्या सिखाएगा, उसे खुद ही कितनी आती है ! पर आप फिक्र न करें, मैं सिखा दूंगी।'

'वाह-वाह, इससे अच्छी बात क्या होगी।'

'पर, एक शर्त है !'

'क्या ?'

'आप जो भी कविता लिखें, मुझे जरूर सुनाया करें।'

'मंजूर !'

बड़ा साधारण वार्तालाप, बड़ा भोला, बड़ा प्रीतिकर—पर अशोक को ऐसा लगा था जैसे उसकी कुर्सी जमीन से ऊपर उठी जा रही हो, जैसे सितारे उसे कुछ पास, कुछ ज्यादा चमकीले दीख रहे हों !

कविता वह बचपन से करता था, बड़े-बड़े कम्पीटीशनों में भाग ले चुका था। इनाम पा चुका था। परिचितों-अपरिचितों की प्रशंसा का पात्र

बन चुका था, पिता और भाई की भर्त्सना का भी। पर अशोक को स्वयं भी पता नहीं था कि कविता में कोई जादू भी होता है !

हां, यह जादू ही तो था जो उस दिन गर्व से उसकी छाती फूल उठी थी। ऐसा अकिंचन, ऐसा बेसहारा अशोक — उसे क्या मालूम था कि उसके पास भी कुछ है जो वह दे सकता है, जो किसी और के पास दुर्लभ है।

वह भूल ही चला था कि वह वहां क्यों उपस्थित था।

और तभी विमल आ गया था।

विमल के कमरे में बैठकर उसके कोर्स की किताबें देखकर पढ़ाई की स्कीम बनाने के बाद उस दिन जब अशोक घर लौटा था तो उसके मन में ऐसी पुलक थी जैसे उसे कोई खजाना मिल गया हो। उसकी चाल कुछ तेज पड़ गई थी और वह बार-बार आखें झुकाकर अपने-आपको ऐसे देखता था मानो उसके कुरते के बटन में कोई फूल लगा हो !

दूसरे दिन कालेज में जब वह अंग्रेजी की क्लास के लिए सीढ़ियों से ऊपर जा रहा था तो देखा, अमिता नीचे उतर रही है। पास आने पर वह मुस्करा दी, और उसने दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया।

पर, पर अशोक को यह क्या हुआ जो उसने न तो नमस्कार का कोई उत्तर दिया, न पहचान का कोई चिह्न चेहरे पर आने दिया। जैसे वह दीवार हो, पत्थर हो, अंधा हो।

शाम को वह विमल को पढ़ाकर लौटने ही वाला था कि पोर्च में अमिता मिली। दोनों हाथ जोड़कर उसे नमस्कार किया।

अशोक हंसा। हाथ जोड़कर बोला : 'नमस्ते।'

'आज कालेज में आपने हमें पहचाना भी नहीं।' अमिता ने शिकायत की।

'जान-बूझकर !'

'क्यों ?'

'मैं नहीं चाहता कि मेरे सहपाठी यह जानें कि मैं आप से परिचित हूं।'

'पर क्यों ?'

'आप बुरा न मानें अमिता जी, मेरा स्वभाव ही कुछ ऐसा है।'
'आप सच्चे कवि हैं!'

अशोक सोचता है, पर क्यों, क्यों उसने ऐसा किया था? क्यों था वह अपने-आप में ऐसा बन्द कि एक परिचय भी उसे बोझ बन गया? संकोच अभिमान? हीन भाव? या कि डर?

हाँ, सहपाठियों का डर, जो हर ऐसे परिचय को एक ही दृष्टि से देखना जानते हैं, जो हर ऐसे सम्बन्ध को सिर्फ एक ही नाम दे सकते हैं।

या कि आशंका?

कि यह असाधारण सौभाग्य कहीं साधारण न बन जाय, कि उसके मन का यह रंगीन स्वप्न कहीं सड़क पर बटने वाला इश्तहार न हो जाय।

अशोक को खुद नहीं मालूम! पर इतना मालूम है कि कालेज के उन चार वर्षों में उसने अपनी गतिविधि अविचल रखी। बड़े सधे डगों से, शान्त और गम्भीर, वह पढ़ने जाता और लौट आता। हाँ, एक बार, बस एक बार इसमें *व्यतिक्रम हुआ था।*

उस दिन किसी टूर्नामिन्ट के उपलक्ष्य में कॉलेज की जल्दी ही छुट्टी हो गई थी। दो घण्टे के समय का उपयोग करने के लिए अशोक लाइब्रेरी में जा बैठा था।

पढ़ते-पढ़ते एक बार जो उसने दृष्टि उठायी तो देखा, लान में खड़ी अमिता अपनी सहेलियों के साथ *चुहल कर रही थी।*

अशोक ने सिर झुकाकर फिर पुस्तक में मन लगा दिया।

पर कहाँ मन लगा! उसने फिर देखा, अमिता उसी तरह हँस-बोल रही थी।

अशोक उठा। नपी चाल से उसने लाइब्रेरी से बाहर आकर लान पार किया, और जहाँ अमिता खड़ी थी वहाँ *जाकर बंधे स्वर में बोला:* 'सुनिये!'

अपना वाक्य आधा छोड़कर, अपनी मुस्कराहट बीच में ही दबोचकर चकित-भ्रमित अमिता उसके पास तक आई।

'आपको शर्म नहीं आती, इस तरह आप अपना समय बरबाद कर

रही हैं। इससे तो अच्छा है, लाइब्रेरी में जाकर ही कुछ पढ़ें।'

कहकर वड़े नाटकीय ढंग से लौट पड़ा, अमिता को बोलने का मौका उसने नहीं दिया।

लाइब्रेरी में अपनी सीट पर लौटने के थोड़ी ही देर बाद अशोक ने देखा, अमिता कार्ड-इन्डेक्स में से किसी पुस्तक का नम्बर खोज रही है।

वह अपनी पुस्तकें उठाकर बाहर चला आया।

और सीधे घर पहुंचकर ही सांस ली।

तृप्ति! परितृप्ति!!

पर क्यों?

उस दिन शाम को जब वह विमल को पढ़ा रहा था तो अचानक अमिता आई और मुस्कराती हुई बोली : 'थैंक्यू!'

'किसलिए?'

'आज आपने कालेज में मुझे डाटकर बड़ा अच्छा किया। सचमुच मैं समय बरबाद कर रही थी।'

'पर मैंने आपको डाटा कब? भला मेरी यह हिम्मत हो सकती है कि आपको डांटू?'

'खैर छोड़िए। मुझे आपसे एक रिक्वेस्ट करनी है!'

'कहिए!'

'आप मुझे आप न कहा करें। आप बड़े हैं, मैं छोटी हूं। आपका आप कहना मुझे अच्छा नहीं लगता।'

क्या आसमान से फूल झर रहे हैं? क्यों, आंखें फाड़े क्या देखते हो? विश्वास करो, यह सच है।

और अशोक अपने स्वयं के शब्द बड़े विस्मय से सुने : 'ठीक है, मैं तुमको तुम ही कहा करूंगा।'

'और मैं आपको क्या कहूंगी, जानते हैं?'

'बताओ!'

'भाई साहब।'

'भाई साहब!'

अशोक गूंगा हो गया है। अपनी धन्यता प्रकट करने को उसके पास शब्द नहीं हैं। पर उसके मन मे धीरे-धीरे दोपहर की परितृप्ति रूपाकार कर उठी है—भाई साहब ! हां, हा, ठीक है, यही तो सच्चा कारण था उसकी परितृप्ति का !

हा, ठीक है। यही कारण था। तभी तो, तभी तो···

सितम्बर की वह सांझ ! अशोक विमल को पढा रहा था कि बीच मे ही विमल कह उठा : 'मास्साब, कल आपकी छुट्टी है। कल आपको आना नही होगा।'

अशोक हँसा, विद्यार्थी अध्यापक को छुट्टी दे रहा है ! पर शायद यही नियम होगा। बोला : 'क्यों ?'

'कल दीदी का जन्म दिन है। बहुत-से लोग आयेंगे।'

'तो मैं···तो मैं भी···' अशोक ने अपने ओठ भीचकर मुंह तक आते उस वाक्य को वापिस निगल लिया। नही, वह मागेगा नही। मागने से जो मिले, वह कृपा होती है, अधिकार नहीं। सम्भल कर बोला : 'अच्छी बात है !' और फिर पढ़ाने लग गया।

काफी देर तक पढ़ाता रहा। हर खटके पर वह आख उठाता कि अब अमिता आई, कहने : 'भाई साहब, कल आप भी निमंत्रित हैं।'

जय विमल जम्हाइया लेने लगा तो उसे पढाई बन्द कर देनी पडी।

चलते-चलते बोला : 'अपनी दीदी को तो बुलाओ जरा !'

बातों-बातों मे वह चर्चा छेड़कर निमंत्रण पा लेगा। यह मागना नही कहा जा सकता।

विमल लौटकर बोला : 'दीदी तो निर्मला दीदी के यहा गई हैं। मा हैं। उन्हे बुला दू ?'

'नही, नहीं', उसके प्रतिवाद का स्वर कुछ तेज था, 'उन्हे कष्ट देने की जरूरत नही। कोई खास काम न था, यों ही जरा बातें करना चाहता था।' कहकर वह चला आया।

अशोक ने करवट ली, जैसे उस दिन का वह उदास भाव मन में फिर उतर आया हो।

उस दिन भी उसकी नजरें झुकी हुई थी, पर चाल में जैसे पंक्चर हो गया हो !

नहीं, वह यों ही नही जाने देगा इसे। कुछ-न-कुछ करेगा, कुछ-न-कुछ उसे जरूर करना चाहिए।

क्या ?

और, अशोक को याद आया, वह रात उसने जागकर बिताई थी। रात भर जागकर उसने एक कविता लिखी थी, अमिता के जन्म दिन पर हर्षोल्लास की एक कविता। कविता जो इतनी लम्बी थी मानो खण्ड-काव्य !

दूसरे दिन तड़के ही उठकर उसने सारे बाजारों के चक्कर काटकर किस तरह अपनी अल्प पूंजी मे बढ़िया से बढ़िया कागज खरीदा, पूरी कविता कैसे मनोयोग से नकल की थी, और जिल्दसाज के पास खड़े-खड़े उसने कैसे उसे पुस्तक का रूप दिया था !

शाम को अखबार के कागज में उस पुस्तक को लपेटे जब वह मैत्र साहब के घर की ओर चला था तो संकोच के मारे उसका एक पैर पीछे पड़ता था तो पुलक से प्रेरित दूसरा पैर आगे।

कविता, जो अमिता को इतनी प्रिय है। फिर संकोच क्या ?

विमल ने आने को मना किया था न !

उसने आने को कब मना किया था ? उसने तो पढ़ाने आने को मना किया था ?

पर, आने को मना न करना होता, तो कुछ भी कहने की क्या जरूरत थी ? वह नित्य की भांति आता। विमल को न पढ़ना होता तो वह 'पार्टी' में शामिल हो सकता था।

बच्चा है, वह ! वह यह सब क्या समझे !

अपने मन में बल भरता अशोक बढ़ता चला गया।

गेट पर पहुंचकर, लेकिन, वह थम गया। उसके पैरों ने जवाब दे दिया।

अन्दर लान में वही 'पद्मावत' वाली फुलवारी झिलमिला रही थी और

हास की हिलोरों से वातावरण मुखरित था।

अचानक खड़े-खड़े उसे खयाल आया : कहीं कोई देख ले तो ?

या कि उसने चाहा कि शायद कोई उसे देख ले और पुकार ले।

अशोक को अनायास बच्चन की कविता याद आई :

इसीलिए खड़ा रहा
कि तुम मुझे पुकार लो !

पर नहीं, उसमें खड़े रहने की हिम्मत नहीं है। उसके पैर लड़खड़ा रहे हैं। वह चलना चाहता है, भागना चाहता है, छूटना चाहता है !

मैत्र साहब के घर से आगे मेन रोड पर वह तेजी से चल दिया।

अशोक को याद है, उस दिन लगभग तीन घण्टे वह सड़क पर चहलकदमी करता रहा था। बार-बार वह मैत्र साहब के गेट तक आता, बार-बार लौट पड़ता। हाथ में अखबार के कागज में लिपटी एक पुस्तकाकार कविता और जी में पुलकमयी बेचैनी, पैरों में असन्तुलन का तूफान।

रात के साढ़े आठ बजे थे जब उसने आखिरी बार मैत्र साहब के गेट पर पैर रखे। मैदान सूना पड़ा था। पोर्च तक की लाइट आफ बन्द थी।

अंधेरे में छाया की तरह वह बढ़ा था। बार-बार मन करता था, लौट चलो। पर वह बढ़ता गया।

अब क्या लौटूंगा, अब तो पोर्च आ गया। अब क्या करूं ? घण्टी बजाऊं ? लाइट जलाऊं ?

खट् !

पोर्च की लाइट जल उठी।

सामने अमिता।

वही चिर-परिचित मुस्कान, वही चिर-परिचित 'अरे, आप !'

राम ने जैसे धनुष तोड़ा होगा, वैसी ही विद्युत् गति से अशोक ने अखबार के कागज में से पुस्तकाकार कविता निकाली, अमिता के फैले हाथों पर रखी, और लौट पड़ा।

अमिता का 'सुनिए' उसे सुनाई नहीं दिया।

दूसरे दिन !

अशोक को याद है, कालेज में जान-बूझकर उसने अमिता से, और उससे भी ज्यादा बाबा से अपनी आंखें चुराईं। साधारणत: रोज़ ही दोनों से दो-तीन बार साक्षात् होता था। बाबा गैलरी में आते-जाते उसकी पीठ थपथपा जाते : 'क्या अशोक !' और अमिता उसे आंख भरकर देखती और मुस्कराकर आगे बढ़ जाती। पर उस दिन उसके जी में कुछ ऐसी धुकर-पुकर थी कि उसने उनका सामना होने से अपने-आपको बिलकुल बचा लिया। न लाइब्रेरी में गया, न कैन्टीन में। एक क्लास से दूसरी में जाते समय भी उसने अपनी नजरें इधर-उधर ही रखीं।

और जब शाम को वह विमल को पढ़ाने गया, तब भी उसकी धुकर-पुकर ज्यों की त्यों थी।

पोर्च की ओर नए कदमों से बढ़ ही रहा था कि आवाज आई : 'अशोक बाबू !'

उसने मुड़कर देखा : बाबा लान में मूढ़े पर बैठे सिगरेट पी रहे थे।

अपनी धुन में खोया न होता तो अशोक उन्हें दूर से ही देख ले सकता था। और तब वह लौटकर कुछ बाद में भी जा सकता था, या उनकी नज़र बचाकर विमल के कमरे तक जा सकता था। पर अब ?

डरते क्यों हो, बढ़ो आगे ?

अशोक बाबा के पास पहुंचकर बोला : 'आज्ञा।'

'तुमने अमिता को कविता दी थी न। बहुत अच्छी है। मैंने भी पढ़वा कर सुनी। यू आर ए वैरी गुड पोयट। आइ लाइक यू ! खूब पढ़ो, खूब लिखो।' तुम्हें यश पाना है।

अशोक ने तत्काल झुककर बाबा के चरण छुए !

एक क्षण खड़ा रहा, शायद बाबा कुछ और कहें !

फिर चला आया विमल के कमरे में।

उसका मन हल्का हो गया था। उसका उपहार स्वीकृत हुआ।

पर फिर भी यह कचोट की रेख कैसी ? यह क्या याद आ रहा है ?

अशोक को याद आया, उसने सोचा था, बाबा ने सब कुछ तो कहा, पर यह नहीं कहा कि कल क्यों नहीं आए पार्टी के समय ? और तो और

भविष्य के समारोहों पर बुलाने की भी कोई बात नहीं कही।

फिर भी मन उसका हल्का था, और भविष्य का निमंत्रण यथासमय भी आ सकता था।

विमल ने उसे देखते ही कहा : 'नमस्ते मास्साब ! आपकी कविता सबको बहुत पसन्द आई।'

'अरे, वह तो यो ही घसीट दी थी।'

और बातों ही बातो में उसने विमल की जन्मतिथि जानकर 'नोट' कर ली थी।

और हालांकि, पता नही क्यों, मैत्र साहब विमल के जन्मदिवस पर कोई उत्सव नही मनाते थे, फिर भी जितने दिन वह कालेज में रहा उतने दिन तक वह नियमित रूप से विमल के जन्मदिन पर कविता-पुस्तक लिख कर भेंट मे देता रहा था। बाद में भी देता, अवश्य देता, पर बाद में उसे इस योग्य कहा रहने दिया गया।

यथा समय अमिता आई थी. ओठों पर मुस्कराहट, हाथ में मिठाई की प्लेट।

'लीजिए, भाई साहब, मिठाई खाइए !'

'कल की मिठाई आज ?'

'कल आप रुके ही नही, मैं बुलाती ही रह गई !'

अशोक के मन ने कहा : 'कह, कहता क्यों नही कि तुमने बुलाया ही ही कब था ?'

पर नही, ऐसी ओछी बात वह नही करेगा, वह नीच नहीं बनेगा।

'कविता कैसी लगी ?'

'बहुत-बहुत अच्छी। मेरे ऊपर लिखी है, इसलिए मेरी तारीफ को शायद आप अतिरंजना समझें, पर मेरी सहेलियो को, मा-बाबा को, सबको बहुत अच्छी लगी।'

अशोक ने याद किया, बाबा ने पढ़वाकर सुनी थी। मा ने भी तभी सुनी होगी।

क्यो, पढवाकर क्यों सुनी ?
सहज कौतूहल ।
कौतूहल, या और कुछ ?
धत् !—और सहेलियो ने ?

'आपकी सहेलियों ने कब पढी ?'

'मैं आज कॉलेज ले गई थी न ! शोभा छीनकर घर ले गई है ।'

फिर कुछ रुककर कहा : 'जानते है, मेरी सहेलियां आपके बारे में क्या कहती हैं ?'

'क्या ?'

'कहती हैं, आप सुपरमैन हैं ।'

अशोक हस पडा—'सो क्यो ?'

'क्लास में फर्स्ट आते हैं, दूसरों को पढ़ाने मे इतना समय देते हैं, और फिर भी इतनी सुन्दर कविताएं लिख लेते हैं । कैसे करते हैं आप इतने काम ?"

'बडी आसानी से । करने को और है ही क्या ?'

'ऐसी-ऐसी वातें आपको आसान लगती हैं, तभी तो आप सुपरमैन है ।'

अशोक के मुंह में मिठाई गल गई थी ।

उस दिन घर लौटते समय रास्ते भर वह यही सोचता रहा : वह सुपरमैन बनेगा, सारी बाधाओ, सारे अभावो को जीतकर, पारकर यश और सुख प्राप्त करेगा । एक अव्यक्त कृतज्ञता से वह भर आया था, अमिता के प्रति, उसकी सहेलियों के प्रति, अपने समस्त परिपार्श्व के प्रति ।

अमिता की सहेलियां !

अशोक को उनकी अब धुंधली-सी ही याद रह गई है । पर एक, हां एक उसे कभी नही भूली । अमिता की प्रतिवेदिनी निर्मला । दोनो का अटूट साथ था सिर्फ इसीलिए नही, इसलिए भी कि उस मधु-पर्व में एक फूल उसने भी चढाया था अशोक की स्वप्न-प्रतिमा पर !

कालेज की ओर से विद्यार्थियो का दल ताजमहल देखने जा रहा था, प्रोफेसर मैत्र के नेतृत्व मे। उस दिन गैलरी मे उसे रोककर बाबा ने कहा था : 'अशोक, मैंने तुम्हारा नाम भी दे दिया है, टूर के लिए। चलोगे न ?'

अशोक ने सोचा, वरदान देने मे पूछना कैसा ! फिर खयाल आया, सरकुलर में लिखा था : खर्च होगा दस रुपये पर हैड, वह सहमकर बोला : 'जाना तो चाहता था, पर ...'

'अरे खर्च की फिक्र न करो ! तुम पोयट हो, तुम्हे जाना चाहिए। अमिता भी जाएगी !'

पूरे एक दिन का सैर-सपाटा। बस की सम्मिलित यात्रा, ताजमहल की छाया मे सहभोज, हसी-गीत, राग-रंग। वह दिन अशोक के मन मे ऐसा रंग-बिरंगा बना हुआ है जैसे कोई अमरीकी फिल्म !

और उन रंगो के पीछे एक कविता है, निर्मला की।

शान्त और गम्भीर, भावुक और मूक अशोक उस राग-रग मे भला क्या योगदान दे सकता था। वह तटस्थ दर्शक ही बना हुआ था कि दोपहर भोजन के बाद किसी ने चर्चा छेड़ी, अशोक से कविता सुनी जाए।

'हा-हा' के शोर के बीच सहपाठिनो ने तालिया बजाकर अपना समर्थन प्रकट किया।

अशोक का तनिक भी मन न था कविता सुनाने को, पर जब बाबा ने भी कहा, और देखा कि सामने अमिता कविता की प्रतीक्षा मे रोम-रोम को श्रवण बनाए बैठी है, तो वह और इकार न कर सका। उसने धीरे-धीरे गुनगुनाना शुरू किया।

पथविहीन : कविता का शीर्षक था।

मैं यात्री हूं, पर मुझे अपने पथ का कोई ज्ञान नही है, मजिल का कोई पता नही है, न चलने का उत्साह है, पर और करू भी क्या, क्योकि मेरे लिए और कोई राह नही है।

मैं चल रहा हूं, क्योकि मेरे पास रुकने का सामान नही है, प्यार करने का भी कोई अरमान नही है, मैं अपना सर्वस्व लुटा चुका हूं, ससार के नियमों में मेरे प्राण घुटते हैं, मैं जा रहा हूं।

मैं जा रहा हूं, यह देखकर तुम रोओ मत ! मैंने अपने मन से मोह निकाल डाला है, फिर तुम्हारी आंखों में ये आंसू क्यों ? अरी पगली, क्या तू नहीं जानती कि यहां सब अकेले हैं, और मिलन-विरह केवल थोथे शब्द हैं !

एकाकी ही है यह जीवन
इसमें मिलन-बिछोह नही है ।

कविता समाप्त हुई तो हर्षध्वनि और तालियो से स्वयं अशोक भी प्रभावित हुए बिना न रह सका। बाबा ने उसकी पीठ थपथपाई तो उसका सर्वांग कण्टकित हो उठा ।

और तब उसकी देह में और भी विचित्र फुरफुरी मच उठी थी जब दूसरे दिन अमिता ने एक कागज उसके हाथ में देते हुए कहा : 'भाई साहब, जरा यह कविता करैक्ट सुधार कर देंगे, निर्मला ने लिखी है ।'

और वह कविता पढते-पढ़ते हिल उठा ।

निस्सन्देह-उसकी भाषा मे सुधार की गुजाइश थी, और उसका छन्द भी टूटा-फूटा था, पर भावो में कोई कमी न थी। और वह बडे स्पष्ट शब्दों में उसकी पहले दिन की कविता का प्रत्युत्तर था :

'अरे पथ हीन ! तू बिना लक्ष्य के किधर बढा जा रहा है, और क्यों, बता तो, भला ऐसी क्या बात हुई जो तेरा मोह टूट गया, तेरे अरमान सूख गए ? आखिर यह उदासी किसलिए ? अगर तेरा जीवन मेरे आकर्षण पर अवलम्बित था, तो मैं तो आज भी पहले ही जैसी हूं, मेरा रूप जरा भी नही बदला है । फिर यह विराग क्यो ?···

अरे पथहीन ! तू भला है, जो सोचता है मुझसे दूर चला जाएगा ! याद रख, यह पृथ्वी गोल है, और तू जहा से चता है, वही पर तुझे लौट कर आना होगा । फिर तू क्यों अपने-आपको धोखा दे रहा है ?'

अशोक के मन मे ऐसी खलबली मची हुई थी जैसे ट्रेन आने के समय प्लेटफार्म पर मच जाती है। पर उसने एक बूद भी न छलकने दी और बंधी नजर से देखते हुए अमिता से बोला : 'अच्छी बात है, कल करैक्ट करके दे दूगा ।'

और दूसरे दिन उसने उस अनघड़ रचना की भाषा और छन्द-योजना

सवार कर अमिता को दे दी। शायद यही एकमात्र ऐसा अवसर था जब उसने अमिता की मुस्कराहट पर कोई ध्यान न दिया।

वह सुपरमैन जो था !

और अशोक द सुपरमैन रोज शाम को विमल को पढ़ाने जाता, और ऐसे लौटता जैसे किसी विजय-यात्रा से लौटा हो, उसके आगे-आगे बैण्ड बजता चल रहा हो, और पीछे-पीछे पूरी जनता उमड़ी आ रही हो उसका जयघोष करती !

रोज अपने कुरते के बटन में वह एक ताजा फूल लिए लौटता और अपने कमरे मे आकर उसे इधर-उधर सजा देता। जब वह पढ़ने बैठता, तो उन फूलों की गन्ध पुस्तकों के पन्नों तक से आती लगती थी !

और यों ही, एक-एक कर फूलों की माला बन गई, और उसके कमरे का एक-एक तिल फूल-मालाओं से लद गया !

और तभी वह दिन आया जब उसे लगा कि वह फूलों पर चल रहा है, उसके रास्ते में फूल ही फूल बिछे हुए हैं।

दशहरे की छुट्टियों मे वह घर गया था। परिवार से भेंट करने के अलावा एक और भी महत्वपूर्ण कारण यह था कि उसे एक साइकिल की जरूरत थी। साइकिल के बिना पैदल आने-जाने में उसे परिश्रम भी काफी पड़ता था, और समय भी काफी नष्ट होता था। समय, जो उसकी पढ़ाई के लिए सबसे जरूरी था; समय, जिस पर उसके भविष्य की नींव टिकी थी।

अशोक को याद आया, घर पहुचकर पहला भाव उसके विस्मय का ही था ! वह दंग रह गया था यह सोचकर, कितना अन्तर है उस परिवार मे जो मैत्र साहब का है, और इसमे जो उसका है। जहाँ कविता अमूल्य निधि मानी जाती है, और जहा खुराफात ! जहा विनोद-परिहास उत्फुल्ल-कारी है, और जहा एक ऐसा एकान्त अभाव है कि अभाव की भी चेतना नहीं। जहां वह सुपरमैन है, और जहा उपेक्षणीय-नगण्य ! वे कुछ दिन उसने कैसी खिन्नता में, कैसी उदासी मे बिताये थे।

उसने सोचा था कि लौटने के दिन पिता से साइकिल की चर्चा करेगा।

पर उसके पहले ही पिता ने उससे उसके विवाह की चर्चा की थी।

'आगे पढ़कर जिन्दगी बरबाद करने से क्या फायदा ! शादी करो, और कोई काम ढूढ़ लो। इतना अच्छा प्रस्ताव फिर नही आएगा, इतने रुपये मिल रहे हैं। और देखो, लड़की कितनी सुन्दर है, जरा यह तस्वीर तो देखो।'

पर अशोक तस्वीर देखने के बजाय वहां से उठ आया। उसने लड़कियां देखी हैं, अब वह नादान नही है, तस्वीर देखकर क्या होगा !

स्वभाव से वह विनम्र है, तब भी था। पर भविष्य की रक्षा में उसे उस स्वभाव से हटना पड़ा था। जब वह लौटकर कालेज आया, तो घर से विच्छेद करके आया था।

पिता ने उसे निकाल दिया था।

अशोक अनाथ था !

अनाथ और सुपरमैन !

एक क्षीण डोरी से उसके प्राण अटके थे, क्षीण पर कोमल : 'भाई साहब !'

उन्ही दिनों की बात है। अशोक लाइब्रेरी मे बैठा अपने मन की उथल-पुथल में यह भी न जान सका कि शाम हो आई है, झुटपुटा घिर आया है, कॉलेज सूना और शान्त हो गया है।

उसका मन डूब गया था, उसकी आंखों में छीटे थे !

तभी उसकी पीठ पर एक हाथ ने थपकी दी !

आह ! वह आश्वस्ति ! !

अशोक ने गीली-भरा आंखें उठाईं तो हड़बडाकर खड़ा हो गया : बाबा !

'क्या बात है अशोक !' धीमे-मीठे स्वर के वे शब्द—और वह फूट पड़ा, फूट-फूट कर रो पड़ा!

बाबा ने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया था, ठीक जैसे कोई अभिभावक रखता, और उसे लाइब्रेरी से बाहर लाते हुए पूछा था : 'बात क्या है ? मुझसे छिपाने की कोई जरूरत नही। टेल मी फ्रैंकली।'

और कॉलेज में मैत्र साहब के घर को आने वाली उस सड़क पर बाबा के साथ चलते-चलते सांझ के उस झुटपुटे में उसने अपने मन की सारी व्यथा उडेल दी थी—अपने भावुक और उपेक्षित मन की आन्तरिक वेदना जो निष्कासन की चोट के कारण यातना बन चुकी थी।

बाबा ने बड़ी सहानुभूति से, बडे प्यार से उसकी करुण कथा सुनी थी। जब तक वे घर के गेट पर पहुचे, तब तक अशोक अपने दर्द का उद्घाटन कर हल्का हो चुका था।

अन्त में बाबा ने कहा था : 'मैं तुम्हारी वेदना समझ सकता हू। तुम बहुत भावुक हो। पर इतना घबराने की क्या बात है। 'आइ कन्सीडर यू एज़ माइ ओन सन'। विगत को भूल जाओ ! तुम्हें अपना भविष्य बनाना है। और भविष्य बन गया तो ये सारी बातें अपने आप ठीक हो जायेंगी। धैर्य रखो, और कोई भी कठिनाई हो तो मुझे बताओ। अभी तुम्हारा सिर्फ एक काम है। इम्तहान में फर्स्ट आना !

अशोक ने निःशब्द भाव से झुककर बाबा के चरण छुए, उसकी पद-धूलि माथे से लगाई, और बोला, 'भगवान करे मैं आपके आशीर्वाद के योग्य बन सकू।'

बाबा ने उसकी पीठ थपथपाई और कहा : 'बी ब्रेव ! यह तुम्हारी परीक्षा की घडी है। परिश्रम करते रहे तो सफलता ज़रूर मिलेगी।'

और फिर कुछ रुककर प्रकृतस्थ होते हुए कहा : 'जाओ, घर जाओ और आराम करो। आज विमल को छुट्टी दे दो ! मैं उसे बता दूगा। फेस लाइफ ब्रेवली।'

अशोक ने श्रद्धा से अपना सिर झुका दिया, और चुपचाप चला आया। अशोक उस शाम को कभी नहीं भूल पाता।

रोने को सदा वह कमजोरी ही गिनता आया है, पर उस दिन बाबा के सामने अपने उन करुण उद्‌गारों पर उसे कोई परिताप नहीं था। उसका मन धुल कर निखर आया था।

घर से लौटा था तो उदास था, दुखी था। रह-रह कर उसे खयाल आता कि उसकी भावना को, उसके विचारों को उसके परिवार में आदर क्यों नहीं मिलता। कभी-कभी उसे अपने ऊपर खीझ भी आती कि वह इतना

उत्तेजित क्यों हो उठा था ?

पर बाबा से बात करने के बाद चित्त शान्त था। मन में न मैला था, न परिताप ! ठीक है, जो उसे नहीं समझना चाहते थे वे न समझें। बाबा उसे समझते हैं, उसे अपने बेटे के समान मानते हैं। और उसे क्या चाहिए ?

उस रात उसने अजीब-अजीब सपने देखे !

उसने देखा कि वह विमल को साथ लेकर अमरीका गया है, मां की गठिया का इलाज करवाने। विमल उसे बड़े भाई की तरह हर काम में आगे कर देता है।

फिर देखा कि वह आई० सी० एम० हो गया है, और जब बाबा को प्रणाम करने पहुंचा है तो उन्होंने उसे बाह पकड़कर उठा लिया है और छाती मे लगाकर कहा है : 'यू आर माई रीयल सन !'

और फिर देखा कि एक दिन मुह-अंधेरे ठाकुर उसके कमरे पर आकर उसे जगाकर कह रहा है : 'मास्साब, फौरन चलिए, मा ने बुलाया है, कर्ता बेहोश हो गए हैं।' और जब वह घर पहुंचा है तो उसने देखा है कि विमल मीना, मा सब फूट-फूट कर रो रहे हैं। मा ने उसे देखते ही रोते-रोते कहा है : 'अशोक, अब क्या होगा ! अब तो तुम्हारा ही सहारा है !'

और अशोक मां के इस वाक्य पर फूट पडा है : 'बाबा !'

पता नही उसने स्वप्न मे पुकारा था यथार्थ में, पर जब उसकी आंख खुली थी तो उसने देखा था कि सवेरा हो गया है, वह शाम को कमरे में आकर जिस तरह बिस्तर पर पड गया था, उसी तरह पड़ा है और उसकी आखो से आसुओ की धारा बह रही है।

और, अशोक ने चौककर याद किया, उन सपनों में अमिता का कोई नाम-निशान तक न था।

पर क्यों ?

सात

अशोक ने आंखें खोली तो अपने-आपको अंधेरे से घिरा पाया। उसने हौले-हौले करवट बदली। खिड़की से बाहर भी अंधेरा दिखाई दे रहा था। सड़क के मोड़ पर कम्पाउण्ड की बत्ती जल रही थी, और सामने के आसमान के टुकड़े में इक्का-दुक्का तारे टिमटिमा रहे थे।

मरण-से मुसका रहे हैं
क्षीण अम्बर के सितारे
निविड़ तृण के कोटरों में
खो गये खग दुलारे !

और अशोक का खग-दुलारा, मन भी अतीत के कोटर में खो गया है। अंधकार से बचने।

किस अंधकार से ?

अमिता ! उसका ध्यान, उसका दर्शन, उसका मिलन क्या अंधकार है ?

एक दिन था कि जब उसके अंधेरे में वही एकमात्र प्रकाश की किरण थी।

'वही क्यों, मां-बाबा-विमल-मीना, यहा तक कि माता और इन्दु बाबू तक उसके मन में ऐसे ही, तारों की तरह जगमगाया करते थे। और उनकी हलकी विरल रोशनी में वह किताबों में डूबा रहता था, अपना भविष्य गढता !

पर चांद नही उगा। इबारत की लहरो पर उसकी कोई भाईं नही उतरी !

उसका अन्तर अकुलाता रहा, पर उमड़ नही पाया !

कापो मत।

पलटो, पन्ने पलटो ! देखो, अभी कितनी किताब बाकी है।

अगले दिन जब वह विमल को पढ़ाने गया था, तो पोर्च में एक साइकिल खड़ी थी।

पढा चुका तो मा ने बुलवाया।

'अशोक, तुम्हारे बाबा कह रहे थे, तुम्हें आने-जाने मे बडा टाइम बरबाद करना पड़ता है, इसलिए तुम्हारे लिए एक साइकिल ठीक करा दी है, विमल तुम्हें दिखा देगा।'

विमल के साथ पोर्च मे आकर उसने देखा था कि किसी पुरानी साइकिल को मरम्मत करके ठीक कर दिया गया है। विमल ने सहज भाव से बताया था: 'कभी बाबा चढ़ते थे। बरसों से बेकार पड़ी थी। आपके काम आएगी।'

साइकिल पर चढ़कर वह बाहर आया तो उसके हाथ कांप रहे थे।

उतरन! सैकिण्ड हैण्ड!—क्या इस उतरन से कहीं निस्तार नहीं है?

बचपन से वह उतरन पहनता आया था।

पर तभी उसे मा के वाक्य याद आए, और याद आए दो शब्द: 'तुम्हारे बाबा!'

वह गद्‌गद हो गया।

यह अकुलाहट!

कुछ नहीं जी, यह अकुलाहट मूर्खता है। वह इसका गला घोंट देगा।

उन कुछ दिनों में वह कितना बदल गया था! उसके व्यक्तित्व की काया ही पलट गई थी। उसके पहनावे मे शायद अज्ञात रूप से ही एक बंगाली भुकान आ गया था। बंगला सीखने में भी उसकी चाल बड़ी तेज हो गई थी। और क्यों न होती, जब अमिता जैसी दुर्लभ शिक्षिका सिखाए!

विमल को पढाने में अब उसने समय की कोई कैद न रहने दी। इतवार को भी पढ़ाता था, क्योंकि विमल को पढाने के अर्थ थे ऐसे वातावरण में सास लेना जिसमे सजीवनी बिखरी हुई हो। कोई भी दिन उससे वंचित क्यों रहे? जितने दिन, जितने क्षण वह उस आशीर्वाद मे, उस पुलक में जी सके, उतना ही वह कृतार्थ होगा।

सात

अशोक ने आखें खोली तो अपने-आपको अंधेरे से घिरा पाया। उसने हौले-हौले करवट बदली। खिडकी से बाहर भी अधेरा दिखाई दे रहा था। सडक के मोड पर कम्पाउण्ड की बत्ती जल रही थी, और सामने के आसमान के टुकड़े में इक्का-दुक्का तारे टिमटिमा रहे थे।

मरण-से मुसका रहे हैं
क्षीण अम्बर के सितारे
निविड़ तृण के कोटरों में
खो गये खग दुलारे!

और अशोक का खग-दुलारा, मन भी अतीत के कोटर मे खो गया है। अंधकार से बचने।

किस अंधकार से ?

अमिता! उसका ध्यान, उसका दर्शन, उसका मिलन क्या अंधकार है?

एक दिन था कि जब उसके अंधेरे में वही एकमात्र प्रकाश की किरण थी।

'वही क्यो, मा-बाबा-विमल-मीना, यहा तक कि माला और इन्दु बाबू तक उसके मन में ऐसे ही, तारों की तरह जगमगाया करते थे। और उनकी हलकी विरल रोशनी में वह किताबों मे डूबा रहता था, अपना भविष्य गढता!

पर चाद नही उगा। इबारत की लहरों पर उसकी कोई झांई नही उतरी!

उसका अन्तर अकुलाता रहा, पर उमड़ नही पाया!

कापो मत।

पलटो, पन्ने पलटो! देखो, अभी कितनी किताब बाकी है।

अगले दिन जब वह विमल को पढ़ाने गया था, तो पोर्च में एक साइकिल खड़ी थी।

पढ़ा चुका तो मा ने बुलवाया।

'अशोक, तुम्हारे बाबा कह रहे थे, तुम्हे आने-जाने मे बड़ा टाइम बरबाद करना पड़ता है, इसलिए तुम्हारे लिए एक साइकिल ठीक करा दी है, विमल तुम्हे दिखा देगा।'

विमल के साथ पोर्च मे आकर उसने देखा था कि किसी पुरानी साइकिल को मरम्मत करके ठीक कर दिया गया है। विमल ने सहज भाव से बताया था: 'कभी बाबा चढते थे। बरसो से बेकार पड़ी थी। आपके काम आएगी।'

साइकिल पर चढ़कर वह बाहर आया तो उसके हाथ काप रहे थे।

उतरन! सैकिण्ड हैण्ड!—क्या इस उतरन से कही निस्तार नही है?

बचपन से वह उतरन पहनता आया था।

पर तभी उसे मां के वाक्य याद आए, और याद आए दो शब्द: 'तुम्हारे बाबा!'

वह गद्गद हो गया।

यह अकुलाहट!

कुछ नहीं जी, यह अकुलाहट मूर्खता है। वह इसका गला घोट देगा।

उन कुछ दिनो मे वह कितना बदल गया था! उसके व्यक्तित्व की काया ही पलट गई थी। उसके पहनावे मे शायद अज्ञात रूप से ही एक बंगाली झुकाव आ गया था। बंगला सीखने में भी उसकी चाल बड़ी तेज हो गई थी। और क्यों न होती, जब अमिता जैसी दुर्लभ शिक्षिका सिखाए!

विमल को पढ़ाने में अब उसने समय की कोई कैद न रहने दी। इतवार को भी पढाता था, क्योंकि विमल को पढाने के अर्थ थे ऐसे वातावरण में सास लेना जिसमे संजीवनी बिखरी हुई हो। कोई भी दिन उससे वंचित क्यों रहे? जितने दिन, जितने क्षण वह उस आशीर्वाद मे, उस पुलक में जी सके, उतना ही वह कृतार्थ होगा।

कभी-कभी वह विमल को, और कभी-कभी विमल और मीना दोनों को मा से कहकर अपने साथ ले आता, घटों उन्हें सैर कराता, नुमायश-अजायबघर दिखाता, अपने विविध ज्ञान की राशि उनके सामने खोलकर बिखेर देता, जैसे कोई चिडियों को चुगाता है।

एक दिन लगा कि बादल छट रहे हैं, चांद की कोर दिखाई पड़ रही है।

'अशोक', बाबा ने कहा . 'यू आर सच ए फाइन पोयट ! एक काम तो करो। मीना को एक डांस करना है। उसका गीत बंगला मे है, अगर तुम अमिता की मदद से उसका हिन्दी अनुवाद कर दो तो बड़ा अच्छा हो !"

'एलो शरते धरार बुके दुलाली मेये !'

दो शामे, पूरी की पूरी दो शामे ! कितनी मीठी थी वे, जब अमिता और वह आमने-सामने बैठे थे, अमिता गीत गाती, उसका अर्थ बताती, और जब वह अपनी सारी प्रतिभा लगाकर एकाध पक्ति का अनुवाद करता तो उसे गाकर देखती कि फिट है या नहीं।

अनुवाद हो गया।

अशोक के तन में वह पुलक दुहरा गई जो कालेज हाल में उस शाम उसने अनुभव की थी जब स्टेज पर मीना ने अपने लघु-लघु चपल चरणो से उसके लिखे शब्दो पर नृत्य किया था, अमिता के ओठो पर उसके लिखे शब्द लहराए थे।

और दुहरा गई वह अकुलाहट जब कार्यक्रम की घोषणा में न अनुवाद का कोई जिक्र मिला था, न अनुवादक का।

अशोक को याद है, चाद की यह कोर न जाने कितनी बार छिपती-दिखती रही थी। जैसे'''जैसे क्षितिज पर कोलम्बस को अपरिचित द्वीप-रेखा दिखी होगी !

दीपावली !

अशोक को वह दिवाली नही भूल पाती। तभी तो उसका परिचय

हुआ था माला दीदी से और इन्दु बाबू से ! माला दीदी की हाल ही में शादी हुई थी और वे हनीमून के लिए कलकत्ते से आए थे सैर करने !

अशोक को याद है, अमिता ने जब पहली बार बातचीत में हनीमून शब्द का प्रयोग किया था तो उसे कैसा अजीब लगा था। शब्द के अर्थ से वह परिचित था, पर उसके चित्र से नही। और उसकी उस गन्ध से तो बिलकुल भी नही जिसने माला दीदी के चारो ओर घेरा डाल रखा था।

अपने पारिवारिक-सामाजिक जीवन में अशोक ने ढेरों शादियां देखी थीं, पर हनीमून यह पहली ही बार देखा।

उस दिन शाम को बाबा ने इन्दु बाबू से मिलाते हुए उसका परिचय कराया था : 'विमल के पडान (विमल को पढाते हैं)। बडा सुशील लडका है। एण्ड वैरी ब्रिलियेण्ट।'

अशोक ने कसक के साथ याद किया, उसने सोचा था, बाबा जोड़ेंगे, 'एण्ड आलमोस्ट ए सन टू मी।' पर यह काल-क्षण रिक्त ही रहा, जैसे कम्पोजीटर की भूल से कभी-कभी छापे में स्थान खाली रह जाता है।

'हां, वह ऐसी ही भूल थी, क्योंकि अर्थ ठीक ही था।

क्योंकि जब वह पढ़ा चुका था तो बाबा ने आकर कहा था : 'आओ अशोक!'

और वे उसे मा के कमरे तक पहुंचा कर चले गए थे।

मा ने कहा था . 'अशोक, भाईफोटा जानते हो ?'

'नही तो !'

'अरे, तुम्हारे यहां भाईफोंटा नही होता ?'

अपने सीमित बंगला-ज्ञान के बल पर अशोक ने अटकल लगायी। और उसे तुरन्त याद आया, आज भैयादूज है।

वह बोल पड़ा : 'हां, हां, भैयादूज ! बहन भाई के टीका करती है।'

'ठीक है। आओ, बैठो।'

उस अनुष्ठान का कोई विवरण आज अशोक को याद नही, क्योंकि वे कुछ घड़ियां उसने जैसे स्वप्न में बिताई हों, उनकी चेतना ऐसी ही अभिभूत हो गई थी।

सिर में दर्द था फिर भी अशोक ने जोर लगाया कि कुछ याद आए।

और···और तब बडी मुश्किल से उसे याद आया, लोहबान का धुआं, अगरु की गन्ध, एक झिलमिलाता दीपक, और गेंदे के फूल जैसे मीना के हाथ, जिनसे उसने उसके माथे पर तिलक लगाकर उसकी गोद मे डाल दिए थे -- एक जोडा धोती, एक शाल, पशमीने का एक खण्ड कुरते के लिए !

'मा', अशोक ने मा की ओर देखते हुए कहा था, 'हमारे यहा तो भाई तिलक के बदले रुपये का उपहार देता है बहन को। यह उल्टी बात क्यो ?'

'यह हमारे यहा की रीति है ।'

और फिर अचानक जैसे अशोक के सिर मे एक साथ सैंकड़ों दीपक जल उठे हो : तिलक सिर्फ मीना ने ही किया था, अमिता ने नही।

क्यो नही ?

फिर अकुलाहट ?

नही, अशोक को तनिक भी याद नही कि तब उसे कोई अकुलाहट हुई थी। उसे तो अच्छा ही लगा था, इतना अच्छा कि उसने आगे कुछ सोचा ही न था।

फिर अब क्यों सोचते हो !

'पडे-पडे क्या सोच रहे हो ?'

अशोक ने आखें खोली तो देखा, कमरे मे लाइट जल रही है, और दीवान पर टिकी वीणा की उगलिया उसके बालो मे घूम रही है।

'ऊ ! सचमुच थक गए हो ?'

अशोक के सिर का दर्द घटता जा रहा है, जैसे कोई लहर चढ़कर उतर रही हो।

'न जाने क्या बात है', उसके स्वर मे बोझ था, 'बड़े जोर से सिर मे दर्द हो रहा था। तुम्हारे आने से कुछ कम होता लग रहा है।'

और अशोक ने आखिरी वाक्य मन ही मन फिर दुहराया जैसे उसमें कोई और अर्थ भी भरना चाह रहा हो !

'बाम लगा दूं ?'

'नही, रहने दो, ठीक हो जाएगा।'

'अरे, कुछ नही, यों ही अंधेरे में पडे-पड़े लगता होगा। चलो, उठो, देखो रात हो रही है।'

'नही वीणा, मुझे वडी थकान लग रही है, आराम करूंगा।'

'तो फिर चलकर वाहर लान मे लेट जाओ। यहां गरमी मे क्या कर रहे हो?'

'अच्छा चलो।'

अशोक लान की ओर बढा तो वीणा कहने लगी : "थोड़ा घूम-फिर आओ तो सुस्ती भाग जाएगी। मैं तो कहती हूं, अमिता के साथ म्यूज़िक कान्फ्रेंस में चले जाते तो अच्छा रहता!'

'नही, मैं लेटूगा।'

कहकर अशोक वाहर पलंग पर आकर लेट गया। आसमान में तारे काफी निकल आए थे, और आसपास के क्वार्टरों की बत्तियां भी आखों मे चकाचौध-सी भर रही थी। कमरो में चलने वाले 'सीलिंग' पंखो की छायाएं दीवारों पर चक्कर काट रही थी।

अशोक ने आखें मूद ली।

म्यूज़िक कान्फ्रेंस! अमिता म्यूज़िक कान्फ्रेंस मे गई है! क्या कह रही थी वीणा? तुम भी चले जाते तो अच्छा होता?

क्या अच्छा होता?

नवम्बर के अन्त की वात है, इन्दु वाबू के जाने के दो-एक दिन पहले की।

विमल ने पढ़ते-पढते उसकी ओर देखकर कहा था : 'मास्साव, आपको मालूम है, कल म्यूज़िक कान्फ्रेंस में दीदी का गाना है?'

शहर मे म्यूज़िक कान्फ्रेंस चल रही थी, यह अशोक को मालूम था, और अमिता संगीत मे कितनी निपुण है, यह भी...पर दोनों का कोई सम्बन्ध वह नही लगा पाया था, इसलिए इस समाचार से उसे कुछ अचरज हुआ था।

'कल हम लोग भी जाएंगे।' विमल ने सूचना पूरी की।

'हमें नही ले चलोगे?' मन का अंकुश लगने से पहले ही अशोक कह चुका था।

'पता नहीं, बाबा जानें।' उसने सहज भाव से कहा।

अशोक हंसी-हंसी में न जाने कितनी बार अमिता से कह चुका था कि उसे संगीत से कोई प्रेम नहीं, और शास्त्रीय संगीत से तो हर्गिज नहीं।

अमिता कभी मानती ही नहीं थी : 'आप झूठ कहते हैं। संगीत के बिना कविता कैसी ?'

अब अशोक कैसे कहे कि उसे संगीत से प्रेम है।

दूसरे दिन विमल ने देखा कि मास्साब आज कुछ उदास हैं, बार-बार घड़ी की ओर देख रहे हैं।

अचानक अशोक ने पूछा : 'तुम लोग कै बजे जाओगे ?'

'अभी तो देर है।'

'जब समय हो जाए तो बता देना, मैं चला जाऊंगा।'

थोड़ी देर बाद मीना आई थी।

'दादा, चलो, मां कह रही है तैयार हो जाओ।'

अशोक ने पढ़ाई बन्द कर दी। धीरे-धीरे उठा, पोर्च में खड़ी साइकिल को स्टैण्ड से अलग किया। पैडल पर पैर रखा ही था कि विमल आया : 'मास्साब, बाबा कहते हैं आप अभी बैठें।'

वे कुछ क्षण उसने कैसी बेकली में काटे थे। कुछ ही क्षण तो थे वे, पर असमंजस और अनिश्चय ने वे पहाड़ बना दिए थे।

विमल के कमरे में बैठा-बैठा वह विचित्र तैयारियों के स्वर सुनता रहा। जूतों की आहट से उसने जाना कि बाबा पोर्च में आ गए हैं, साड़ी की सरसराहट और चूड़ियों की खनक से उसने माला और मीना की उपस्थिति पहचानी, और पहियों की कड़कड़ाहट और घोड़े की टापों से उसने पहचाना कि घोड़ागाड़ी आ गई है।

अशोक ने सुन लिया कि विमल के कमरे की चिक उठी है, बाबा ने प्रवेश किया है।

क्या कहेंगे वे ? क्या कहना है उन्हें ?

बाबा ने कहा : 'आओ अशोक !'

अशोक उठकर बाबा के पीछे-पीछे बाहर आया।

बाबा बोले : 'तुम भी चल रहे हो न ? विमल कह रहा था कि…'

'जरूर', अशोक और कुछ न कह सका।

बाबा के साथ वह घोड़ा-गाड़ी तक आया। एक ओर इन्दु बाबू और माला दी बैठे थे, दूसरी ओर मीना और विमल। विमल के पास खुद बैठते हुए बाबा बोले : 'बैठो ?'

पल-भर अशोक सहमा, कहां बैठें ?

फिर जहां जगह की गई थी वहां बैठ गया।

माला दी के साथ।

और जब घोड़ागाड़ी चली तो अशोक को लगा, जैसे वह किसी नए देश की यात्रा पर निकला है।

फिर दर्द ! सिर में अचानक फिर बड़े जोर का दर्द उठ रहा है।

कान्फ्रेंस हाल के दरवाजे पर एक मिनट के लिए सबको खड़ा करके बाबा अन्दर गए, और फिर लौटकर बोले : 'आओ अशोक !'

अशोक संज्ञा-शून्य यंत्र-सा उनके पीछे-पीछे गया और उन्होंने जहां बैठाया वहां बैठ गया।

पर विमल, मीना, माला दी, इन्दू बाबू ?

कुछ देर बाद अशोक की आंखों ने जो दृश्य देखा उससे [illegible] गई।

वह सबसे पीछे की क्लास में बैठा था और बाकी लोग [illegible] सबसे आगे की क्लास में।

बीच-बीच में मीना मुड़-मुड़कर उस भीड़ में उसे ढूंढ़ [illegible] रही थी।

अशोक को काटो तो खून नहीं। यह क्या [illegible] मैंने तो विमल से साथ चलने को कहा था। [illegible] क्या ?

'यू आर आल्मोस्ट ए मैन टु डे !'

इस 'आल्मोस्ट' (लगभग) के क्या [illegible] है ?

अशोक को ग्लानि के कारण रोना आ गया।

वह चुपचाप उठा और बाहर चला आया ।

कान्फ्रेंस से मैत्र साहब के घर तक की पैदल यात्रा, फिर वहा से अपने कमरे तक की साइकिल-यात्रा । जैसे वह अंगारों पर चला हो ।

लगता है, अब फाहा उचल रहा है ।

इस टीस से डरो मत, अशोक, यह अनिवार्य है ।

पर नही, यह घाव नही है । खाल कुछ सूज आई है, कुछ लाल भी पड़ गई है, पर घाव अभी नही उघडा है ।

अगले दिन शाम को अमिता ने पूछा था : ''वाह भाई साहब, यह आपने क्या किया ? आप चले क्यों आए ?'

'कुछ नही, सिर मे दर्द होने लगा था तो चला आया । तुम जानती हो, मुझे सगीत से इतना प्रेम तो है नही ।'

अमिता ने हँसते हुए जोडा : 'हम लोगों ने आपको बहुत ढूढा । जब मेरा गाना खत्म हो गया तब घर आते समय आपको चारो तरफ तलाश किया, पर आप दिखे ही नहीं । घर लौटे तो ठाकुर ने बताया कि आप तो थोडी देर बाद ही आकर साइकिल लेकर चले गए थे ।'

'हां ।' उसने कुछ अनमने होकर ही कहा था । पर लाख चाहने पर भी वह मन की बात न कह सका ।

और दो-चार दिन तक अपने मन से जूझते रहने के बाद उसने मन को समझा लिया कि उसे नीची सीट देने मे बाबा के मन का दुराव ही कारण हो, यह जरूरी नही है । रिजर्वेशन की भी समस्या हो सकती है, और भी अनेक कारण हो सकते है !

और मन समझ भी गया, पर प्रसन्न नही हो सका ।

बादल फिर घिर गए, चाद की कोर फिर दब गई । पर तारे फिर भी झिलमिलाते रहे, और अशोक का मन आशा-निराशा के झूले में झूलता रहा । रोज शाम को वह फूलो के पथ पर आता-जाता रहा, और कॉलेज मे रोज बाबा की थपकी से आश्वस्ति पाता रहा ।

और अमिता की मुस्कराहट से स्फूर्ति !

मई का महीना ।

परीक्षाओं के परिणाम !

विमल पास हो गया, अमिता भी।

अशोक क्लास में सैकिण्ड आया। पिछले दस वर्षों में पहली बार सैकिण्ड ! हमेशा वह फर्स्ट आता था।

बाबा ने कहा : 'अशोक, यह क्या बात है ? पर्चे तो ठीक हुए थे न ?'

'जी हां, और नम्बर भी अच्छे ही मिले है। सिर्फ दो नम्बरों से सेकिण्ड हो गया हूं।'

'कोई बात नहीं। फाइनल के लिए थोड़ी मेहनत और करना। गर्मियों की छुट्टी में डटकर पढ़ो।'

अशोक ने खुद ही तय कर रखा था कि वह छुट्टियों में पढाई के अलावा और कुछ न करेगा।

अब अशोक सोचता है तो बात कितनी साफ लगती है। उसे सब कुछ भूलकर पढने में जुट जाना चाहिए था, परीक्षाओं मे विजय-पताका फहरा कर सफलता के सर्वोच्च शिखर पर पहुंच जाना चाहिए था। उसमे प्रतिभा थी, लगन थी, क्षमता थी।

फिर क्या नहीं था ?

नही था मन !

क्यों ?

अशोक ने दोनों हाथों से सिर को बडे जोर से दबाया जैसे उसे बिखरने से रोक रहा हो।

कैसा था उसका मन जो इतनी सरल बात इतनी जटिल हो गई ? जो आवश्यक था वह अनावश्यक, और जो अनावश्यक था वह आवश्यक बन बैठा ?

सत्य की खोज करने चले हो तो सत्य से इंकार मत करो ! रोगी की तरह कराहो मत, डाक्टर की तरह तटस्थ रहो—तटस्थ और वत्सल !

बोलो, क्यों नही था तुम्हारा मन ?

क्योंकि ?

क्योंकि अमिता नही थी।

क्या कहा, अमिता ?

मेरा मतलब तुम नही समझे। अमिता नही थी, यानी बाबा-मा, मीना-विमल, अमिता—कोई नही था।

मई के अन्तिम चरण मे एक दिन अमिता ने बातचीत के दौरान में हसते हुए कहा था : 'हम लोग परसों कलकत्ते आ रहे है।'

'क्यो ?'

'छुट्टियों में घूमने ! कलकत्ते मे हमारा घर है।'

'हर साल जाते है ?'

'पहले जाते थे। इधर कुछ वर्षो से नही गए।'

बाद में अशोक ने विमल से कहा था : 'जाने के पहले अपना पता देते जाना। मैं चिट्ठी लिखूगा।'

विमल ने कहा : 'अभी तो मास्साब, यही तय नही हुआ है कि हम लोग कहा ठहरेंगे। बहुत से रिश्तेदार है। मैं वहा पहुचकर आपको चिट्ठी डाल दूगा।'

अशोक ने एक कागज पर अपना डाक-पता लिखकर विमल को दे दिया।

प्लेट फार्म पर विदाई।

अशोक को वहा देखकर बाबा चौके थे : 'अरे ! तुम क्यो आए बेकार ! पढो, अशोक, पढो !'

'प्रमाण करने चला आया !' उसके स्वर मे कमजोरी आ गयी थी।

मा-अमिता जनाने डिब्बे में बैठी, बाबा-विमल मर्दाने में। पर मीना अपनी जगह तय न कर सकी। गाड़ी चल देने पर ठाकुर ने उसे बाबा के पास से गोदी मे उठाकर मा के पास बैठा दिया था।

अशोक को आश्चर्य हुआ कि इस समय वह छवि क्यो नही दिख रही है। तूफानी लहरो की उथल-पुथल मे वह ऐसी खो गई है कि मानो हो ही नही। पर वह जानता है, वह छवि वहा है, क्योंकि लहरें जब शान्त रही है तब वह उसे बराबर देखता रहा है।

वह अविस्मरणीय छवि, अमिता की।

जब वह मां-बावा के पैर छू चुका था, और वे अपने-अपने डिब्बों में बैठ चुके थे, तब अमिता बाहों में तानपूरा लिए डिब्बे पर चढ़ी थी, और फिर खिड़की के सहारे बैठकर उसकी ओर निहारती हुई मुस्कराई थी। वह मुस्कराहट उसके मन में ऐसे उतर गई थी जैसे गीली मिट्टी में हल की फाल।

वह विमल से हाथ मिला रहा है, मीना को हंसा रहा है, पर देख रहा है उस मुस्कराहट को जो अमिता है!

बावा ठाकुर को आदेश दे रहे हैं, उनकी अनुपस्थिति में घर को कैसे रखना है, क्या-क्या इन्तजाम करने हैं, अखबार वाले से क्या कहना है, घोड़ागाड़ी पर रोगन कैसे होना है, आदि-आदि।

और अशोक प्रतीक्षा में है कि अब बाबा उसकी ओर मुखातिब होकर कहने वाले हैं: 'अशोक, लो, ये चाभियां लो, घर का जिम्मा तुम्हारा। वहीं रह कर पढ़ना। ठाकुर तुम्हारे लिए सब सुविधाएं जुटाएगा।'

बिना शब्द के भी क्या कान सुन सकते हैं। अशोक ने पूरा वार्तालाप सुना है, पर बाबा ने तो एक शब्द भी नहीं कहा है।

सीटी देकर गाडी चल पड़ी। 'अच्छा' कहकर बाबा ने अपनी दृष्टि अखबार में गड़ा दी। विमल-मीना ने हाथ जोड़कर कहा . 'नमस्कार मास्साब।' मां ने हसकर कहा: 'अच्छी तरह रहना अशोक!'

पर जिसने कुछ नहीं कहा, वह अमिता ही जैसे अशोक का लक्ष्य बन गई थी। जब तक वश चला वह देखता रहा खिड़की पर रखी वह उजली किरण-सी बांह, खिड़की से बाहर हवा में लहराता वह धानी पल्ला।

अपने कमरे में लौटकर अशोक ने जेब से निकालकर मेज पर रख दिया: प्लेटफार्म का टिकट।

जाने किस झोंक में उसने तय किया था कि टिकट यहीं रखा रहेगा, यों ही रखा रहेगा तब तक जब तक विमल की या किसी और की कोई चिट्ठी न आ जाए।

छुट्टियों-भर टिकट मेज पर यों ही रखा रहा।

और छुट्टियों-भर अशोक मेज पर बैठकर पढ़ता-लिखता रहा—उपन्यास पढ़ता रहा, कविताएं लिखता रहा।

कभी-कभी सोचता बाबा मुझे साथ भी ले जा सकते थे। क्या मेरा मन नही होता सैर करने को। ठीक है, उसे इम्तहान पास करना है। पर क्या विमल को और अमिता को इम्तहान पास नही करने है ?

तो क्या तुम समझते हो, तुम सचमुच उस परिवार के अंग हो ?

क्यो नही हू ? बाबा ने उसे बेटा नही कहा है ? मीना ने उसे भाई नही बनाया है ?

स्नेह को अधिकार मत समझो, अशोक ! पागल मत बनो ! ! तुम्हारे लिए संसार नही बदलेगा ! ! !

तो फिर क्या समझू ? जहा अधिकार था वहा स्नेह नही मिला, जहा स्नेह मिला है, वहा अधिकार नही ! यह कैसी विडम्बना है ? पिता भी ठीक, वही एक—एकमात्र वही गलत है ?

नही, मैं नही मानता ! मैं नही मानता ऐसे संसार को। मैं संसार को बदल डालूगा। मैं नहीं बनता आई० सी० एस०—मैं नही पढता, ये रखी किताबें। मुझे स्नेह चाहिए, मुझे स्नेह दो। अरे, मुझे स्नेह दो ! !

दर्द !

दर्द तो होगा। होता है तो होने दो।

क्यों ?

क्योंकि, तुम आई० सी० एस० नही हुए, पर तुम संसार को भी तो नही बदल सके ! क्या कर लिया तुमने ? सफलता के शिखर पर चढने से इंकार कर तुमने क्या पाया ?

पीड़ा—पीड़ा का शिखर !

फिर ? फिर दोष किसका रहा ?

अशोक को बिलकुल याद नही है, कब छुट्टिया गुजरी, कब बाबा लौटे, कब पुराना क्रम फिर चल पडा। पर, सब कुछ सहज भाव से ही हुआ होगा —सिवाय उसके मन के, जिसकी सहायता सदा के लिए गायब हो गई थी।

बस एक स्थान पर वह सहज होता था। अमिता के सामने ! तब

उसका रोम-रोम हंसता था। वह हंसी पेट्रोल थी, दिन-भर अपनी गाड़ी चलाने के लिए।

और एक दिन वह हंसी भी छिन गई।

एक दिन वह विमल को पढ़ाकर वापस आ रहा था कि बाबा ने पोर्च में आकर कन्धा थपथपाया था : 'ठीक हो, अशोक बाबू !'

'बाबू' पर वह चौंका था। बाबा बहुत कम, शायद ही कभी उसे बाबू कहते थे।

और फिर वे उसके साथ लग लिए। अशोक साइकिल थामे पैदल चलता रहा।

बाबा ने उसकी पढ़ाई-लिखाई के बारे में चर्चा की, फाइनल की तैयारी अभी से पूरे जोर-शोर से करना जरूरी है, यह बताया। परीक्षा का उसके जीवन में क्या महत्त्व है, यह समझाया, और जब अशोक को लगा कि उनका वक्तव्य समाप्त हो गया है और वे लौटने ही वाले हैं, तब जैसे अचानक उस पर गाज गिरी।

'तुम अमिता से क्या बातें करते रहते हो ?'

अशोक को नही सूझा कि क्या उत्तर दे, पर सोचने का भी कोई अवकाश न था।

'खास तो कुछ नही।' उसका मन सिमट आया था, कछुए की तरह !

'उससे बातें मत किया करो। विमल को पढाने आते हो, उसे पढाओ और फौरन लौट जाओ। बी ए गुड वाय। समझे ?'

'जी, आगे से ऐसा ही होगा।'

'गाड ब्लेस यू ! भगवान तुम्हें सुखी बनाए।' कहकर बाबा लौट पड़े।

नहीं, अशोक को अच्छी तरह याद है, वह रोया नहीं था, गिड़गिड़ाया भी नही था। वह दंग रह गया था।

कमरे मे आकर बिस्तर पर पड़ गया था।

और, अब उसे सोचकर आश्चर्य हो रहा है, वह क्रुद्ध हुआ था ! क्रोध में उसका बदन थरथरा रहा था, उसका माथा फटा जा रहा था।

वह रात ! उस रात अंग्रेज़ी के 'नाइट मेयर' (यंत्रणा) पद का अर्थ

अनुचित और अस्वाभाविक है। इसमें सन्देह नहीं कि मैं आपके आदेश का उल्लंघन करने की बात स्वप्न में भी नहीं सोच सकता, पर मैं आपसे करबद्ध विनय कर रहा हूं कि आप अपना यह आदेश लौटा लें।

यदि मेरे किसी कार्य या व्यवहार से आपको यह लगा हो कि मैं इस योग्य नहीं हूं कि आपका पुत्र कहलाऊं अथवा आपको मेरे चरित्र पर किसी प्रकार का सन्देह हो तो कृपया मेरा विचार करें और मुझे सफाई पेश करने का अवसर प्रदान करें। प्रत्येक पिता को यह अधिकार होता है कि अपने पुत्र की गतिविधि पर नजर रखे। और यदि तब मेरी कोई भूल या धृष्टता सिद्ध हो तो मुझे जो भी दण्ड आप देंगे वह मैं शिरोधार्य करूंगा। पर इस प्रकार अपने आपको आपका पुत्र मानते हुए भी मैं अमिता से दूर रहूं, यह किसी भी तरह नहीं सह पाऊंगा।

आपका अनुगत
अशोक

गुमसुम !

दो दिन तक जीवन रुका रहा था, संसार अचल हो गया था।

दो दिन अशोर कॉलेज नहीं गया।

पहले दिन शाम को वह विमल को पढ़ाने गया, और जब पढ़ाकर लौट रहा था, तो एक नीला लिफाफा विमल के हाथ में थमाकर वह कह आया था : 'बाबा को दे देना। पढ़ना मत !'

दूसरे दिन वह मन से जूझता रहा कि पढ़ाने जाए या नहीं !

आखिर में जब विमल के यहां पहुंचा तो नित्य के समय से काफी देर हो गई थी।

विमल के कमरे तक नहीं जाना पड़ा बाबा लान में मूढ़े पर बैठे सिगरेट पी रहे थे।

अशोक के पैर डगमगा रहे थे !

क्या करूं, वापस लौट जाऊं ?

नहीं !

चलूं, बाबा से बातें करूं ?

नही, तुम अपना काम कर चुके। अपनी भावनाएं लिखकर उन तक पहुचा चुके। अब कुछ कहना उनका काम है।

आगे बढो, चलो विमल के पास।

जब वह पोर्च की दो सीढिया चढने लगा तो बाबा ने पुकारा : 'अशोक ?'

ठीक है, अब जाने मे कोई हर्ज नही।

लौटकर वह लान मे आकर बाबा के पास खडा हो गया, शात, चुप !

एक मूढे की ओर इशारा कर बाबा ने कहा : 'बैठो !'

अशोक बैठ गया, जैसे चाभीदार खिलौना बैठता है।

आज एक नई बात हुई। बाबा अशोक से बात कर रहे थे, पर देख रहे थे न जाने किधर !

बोले . 'तुम्हारी चिट्ठी मिल गई।' फिर कुछ हसकर : 'तुम बहुत भावुक हो। जरा-सी बात को इतना बडा क्यो बनाते हो ! मत भूलो कि तुम विद्यार्थी हो, और इस समय तुम्हे अपनी सारी शक्तिया अध्ययन मे लगानी चाहिए।' बाबा चुप हो गए।

अशोक ने सोचा, क्या वे मेरे कुछ कहने की बाट देख रहे है ?

फिर बोला : 'जी हा, यह तो ठीक है !'

बाबा बोल पड़े : 'लाइफ इज नोट ए बैड आफ रोज़ेज ! जिन्दगी फूलो की सेज नही है। वह परिश्रम मागती है। तुम परिश्रम से बचकर सफल नही हो सकते। तुम क्यो अपना टाइम 'वेस्ट' करोगे ?'

'मैं तो पूरी मेहनत से पढ़ता हूं !'

'वही तो कहता हू। आइ लाइक यू, यू आर ए ब्रिलियेण्ट वाय, बट प्लीज़ अण्डरस्टेण्ड मी ! अमिता से तुम क्या बात करोगे ? और क्यो करोगे ?'

फिर रुककर कहा : 'आइ नो यू, आइ ट्रस्ट यू ! नही तो, क्या मैं अमिता को मना न कर सकता था ? पर वह ठीक न होता। तुम्हारा एक-एक मिनिट कीमती है। जाओ, तुम्हे फर्स्ट आना है। फारगेट एव्रीथिंग ऐल्स।'

एक बार अशोक ने अपेक्षा की कि वे शायद कुछ और कहे। फिर जब उन्होने सिगरेट मुह मे लगा ली, तो वह धीरे-धीरे उठकर चला आया।

आठ

'सुना क्या सचमुच बहुत दर्द हो रहा है ?'

वीणा न जाने कब से उसके सिरहाने आकर बैठी थी।

अपने माथे पर उसकी गुदगुदी उंगलियों के स्पर्श से अशोक को बड़ी शान्ति मिल रही थी।

'ऐस्प्रीन ले लो !'

'नहीं, अब कुछ हलका लगता है', कहकर अशोक उठ बैठा।

रात हो गई थी। उसने हाथ उठाकर घड़ी देखी : साढ़े सात बजे थे।

'आज का दिन कैसा भारी लग रहा है। तभी तो मुझे [illegible] पर प्रोग्राम चेन्ज करना अच्छा नहीं लगा।' उसने वीणा से कहा।

'पड़े-पड़े तो भारी लगेगा ही।' वीणा बोली, '[illegible] आओ। या फिर आओ, मेरी तैयारी में ही कुछ हाथ बंटाओ।'

'समझ में नहीं आता, क्या बात है।' अशोक ने कहा, '[illegible] बाहर टहल आता हूं, शायद कुछ मूड ठीक हो।'

चप्पलें पहनकर वह धीरे-धीरे बाहर आया, [illegible] जिससे कुछ देर पहले अमिता गई थी।

बन्द या अंधेरी ?

धीरे-धीरे पैर बढ़ाओ, चलते चलो, अगर दीवार से सिर टकराने लगे तो लौट पड़ना।

चलो, डरो मत।

बाबा से बात करने के बाद जब अशोक विमल के कमरे मे पहुंचा था तो उसे लगा था शायद वह गलती से कहीं और आ गया। सामने बैठा विमल, मेज पर पड़ी किताबें, कमरे का वह पुराना क्रम-करीना—सब उसे बड़े नए अनजाने-से लगे।

जैसे-तैसे उसने पढाई समाप्त की, और चला आया।

बाबा ने उसे डांटा होता, उस पर क्रोध किया होता, उस पर लांछन लगाया होता तो भी वह शायद इतना उदास, हतप्रभ न होता ! उसने तो खुद ही तय कर लिया था कि या तो सफाई हो जाएगी, या विच्छेद—दुविधा वह नही रहने देगा, क्योंकि दुविधा उसे अकर्मण्य बनाती है।

पर बाबा ने जो समाधान किया था उसमे मानो उस दुविधा की ही प्रतिष्ठा की थी।

उस दिन घर लौटते समय अशोक ने मुड़कर बाबा के घर की ओर इस तरह देखा था, मानो यह उसका अन्तिम दर्शन हो, मानो अब उसमें वह कभी प्रवेश न कर पाएगा।

काश, ऐसा ही हुआ होता !

क्यों नही हुआ ऐसा !

अशोक को याद आया, उस दिन घर पहुंचकर उसने यही तय किया था कि वह विमल को पढाना छोड़ देगा। उस घर मे आएगा तो उस परिवार का अभिन्न बनकर ही, अन्यथा वह नही जाएगा।

विमल को मैं क्यो पढ़ाता हू ?

रुपयों के लिए।

जी नही, रुपयों के लिए नही ? रुपये मिलते हैं, यह तो ठीक है, पर वह और बात है। कोई और 'ट्यूटर' क्या इतना समय देता, इतनी लगन

दिखाता। वह पढ़ाता है ताकि विमल का विकास हो, सही विकास हो।

और यह साइकिल, ये कपड़े, ये पुस्तकें—ये क्या बाबा ने विमल को पढ़ाने के कारण ही दी है !

और अशोक के अचरज का ठिकाना न रहा कि जिस तर्कना से वह विच्छेद तक पहुंचना चाह रहा था, उसी के सहारे वह उस दुविधा से ही पथ पर जा निकला था।

बाबा ने मुझे ये सब चीजें दी है ताकि मैं निश्चिन्त होकर पढ़ सकूं—उन्होंने अस्मिता से बोलने को मना किया है ताकि मैं समय बरबाद न करूं।

बाबा ठीक है, मैं गलत हूं।

बाबा की भावना पर सन्देह करता हूं : मैं मूर्ख हूं।

और दूसरे दिन—दूसरे, तीसरे और चौथे दिन—प्रतिदिन वह ठीक समय पर पढ़ाने गया था, जाता रहा था।

पर फूल गायब हो गए।

अब वह नीची नजर किए अपने मन मे विभोर होकर नहीं लौटता था। अब वह घर पहुंचने की हड़बड़ी मे रहता ताकि पढ़ाई मे जुट सके। कुरते की बटन की ओर देखने का उसे होश ही न रहता।

और घर के कण-कण में लिपटी वे अनगिनत फूल-मालाएं ?

अशोक को डर हुआ कि वे सूख न जायें और बुहारकर बाहर न फेंकनी पड़ें। इसलिए बहुत रात बीते जब वह सोने जाता, जब उसका अंग-अंग श्रम और थकान से दुखता होता, तब वह सपनो में डूबने से पहले उन फूलों का अर्क खींचता रहता।

और उसकी टूटी-फूटी पिटारी मे इत्र की शीशियां इकट्ठी होने लगीं। जब वह पढ़ाई समाप्त कर चुकेगा, जब दुनियादार बनेगा, तब काम आयेंगी।

और कुछ इत्र मे डूबे हाथ जब लेखनी उठाकर कविता लिखते तो कुछ महक उन कविताओं में भी छनकर पहुंच जाती।

पर कभी-कभी ताजा फूल भी मिल जाता था।

अगले हफ्ते की ही तो बात है। उसने विमल को 'चरित्रहीन' की

प्रति देते हुए कहा था : 'दीदी को दे देना । और कहना, और कोई किताब दे दें।'

'दीदी तो घर मे ही हैं। मै बुला लाता हूं।' विमल बोला।

'नही, रहने दो, उन्हे पढने दो।' कह कर वह चला आया था।

और उसे यह बडा सुखकर, आविष्कार लगा था कि विमल को उस दूरी का कोई भान न था जो बाबा ने खड़ी कर दी थी।

अगले दिन विमल को पढाते समय कमरे का परदा हटाकर अचानक अमिता आ गई थी : 'नमस्कार, भाई साहब।'

नमस्कार तो उसने कर दिया, पर वह मुस्करा न सका था।

'कल प्रचारिणी सभा मे आप क्यों नही गए ?'

अशोक को याद आया, कल एक कवि-सम्मेलन था, और निमंत्रण उसे भी मिला था, पर वह नही गया था।

'मन नहीं हुआ।'

'वाह, हम तो यही सोच कर गए थे कि आपकी कविता सुनने को मिलेगी।'

'हम कौन ?'

'निर्मला, मैं और शोभा।'

'फाइनल ईयर है, मुझे पढ़ना चाहिए। यह सब तो बाद मे होता रहेगा।'

'असल में *गलती तो मेरी ही थी, जो आप से पूछना भूल गई*। परेशानी बच जाती।'

'मुझे अफसोस है। पर और भी तो ढेरों कवि आये होंगे। आपका तो कोई नुकसान न हुआ होगा ?'

'वाह, हमे तो सिर्फ आप ही की कविता अच्छी लगती है, और उसी के लिए गये थे।'

कह कर वह अन्दर चली गई।

फिर एक क्षण बाद लौटी और बोली : *'आपने फिर हमें 'आप' कहा?'*

'सारी ! भूल हो गई।'

उस दिन अशोक के कुरते के बटन में जो फूल था वह और बडा था, और भी महकीला।

'तो बाबा ने अमिता को कुछ नहीं बताया है तब तो ठीक ही है, मैं बेकार न जाने क्या-क्या सोच लेता हूं।'

यह और बात है कि कभी यह फूल कुछ और छोटा होता था, और कभी-कभी निर्गन्ध, जब पोर्च में आते-जाते अमिता से सिर्फ साक्षात् ही हो पाता, या जब मीना आकर कहती : 'देखिए, मास्साब, यह खरगोश कैसा बनाया है ?' या जब मा ठाकुर के हाथो उसे एक प्याला चाय या शरबत का घोल भिजवाती।यह भी और बात है कि कभी-कभी यह फूल 'कैक्टस' का फूल होता। जब हफ्तों समझाने पर भी विमल की समझ में कोई सवाल न आता और वह झीककर विमल से कह उठता : 'ज़रा मा से जाकर कहो, मै मिलना चाहता हूं।'

मन उसका कैसा लहराने लगता था। जब विमल कमरों के परदे उठाता जाता और वह ड्योढिया पार कर मां के कमरे में पहुचकर उनके पैर छूता।

'क्यों अशोक, क्या बात है ?'

'देखो मां, आज कल विमल पढ़ने मे जरा भी मन नही लगाता। इतने दिनो से ऐकिक नियम बता रहा हूं पर इसे याद ही नही होता। ज़रा इस पर कुछ कड़ाई होनी चाहिए।'

मा हंसकर कहती, 'अच्छी बात है।' और विमल को जाने को कह कर जोडती : 'सब तुम्हारे जैसे ब्रिलियैण्ट नही होते, अशोक !'

और फिर मां उसके हाल-चाल पूछतीं, और पास के कमरे से कभी चूड़ियों की खनक, कभी कोमल गोरे पैरों की उंगलिया, कभी किसी गीत की गुनगुनाती कड़ी उसके हाथ लगती !

'आंखिपाता घूमे जंड़ाये आछे !

या

मेघ मेदुर बरषाय कोथाय तुमि ?

और वह रास्ते-भर दुहराता आता . कोथाय तुमि ? कोथाय तुमि !! कहां हो तुम, कहा हो तुम !

अशोक को लगा, वह दीवार से जा टकराया है।

आख उठाकर देखा, अरे ! यह तो 'लैम्प-पोस्ट' है, जिसका बल्ब गायब हो गया है !

एक दिन उसकी खुशी का बल्ब भी ऐसे ही गायब हो गया था।

उस साल परीक्षा मे विमल फेल हो गया था।

अशोक को सेकिण्ड क्लास मिला था।

अमिता को थर्ड क्लास।

'जितनी तैयारी मैंने इस साल की थी', उसने बाबा से कहा था, 'इतनी मैंने जिन्दगी में कभी नही की। फिर भी मै फर्स्ट क्लास न पा सका। मेरा तो भाग्य ही खराब है।'

बाबा के चेहरे पर वेदना की रेखाए थी, शायद सहानुभूति की भी। बोले : *'मैं समझता हूं। अमिता को देखता हूं तो तुम्हारी हालत का* ध्यान भी हो आता है। पर अभी कुछ नही बिगडा है। एम० ए० मे फर्स्ट क्लास ला सको तो सब ठीक हो जाएगा। एण्ड दिस टाइम यू मस्ट गेट ए फर्स्ट !'

'मैं अपना पूरा दम लगा दूगा।'

'दैट इज द स्पिरिट हा, ऐसी हिम्मत चाहिए ! लेकिन एम० ए० की पढ़ाई के लिए तुम्हे बहुत समय चाहिए। तुम एक काम करो, विमल को पढ़ाना छोड़ दो !'

बादल गरज रहे हैं, बिजलियां कडक रही हैं !

'पर बाबा बिना पढ़ाये मेरा काम कैसे चलेगा। अब तो स्कॉलरशिप भी नही है।'

'मैं तुम्हें कालेज मे 'ट्यूटरशिप' दिला दूगा। इसके अलावा पढ़ाये बिना ही तुम्हें रुपये मिलते रहेंगे।'

'पर बिना परिश्रम के मैं रुपये कैसे ले सकूगा।'

'क्यों नही ले सकोगे ? जैसे मैं दूंगा वैसे ही लेना।'

वर्षा हो रही है, मूसलाधार वर्षा !

'ठीक है, पर विमल को पढाने मे मुझे कोई बोझ नही पडता। मेरे लिए तो यह एक प्रकार का मनोरंजन है। और फिर, जब तक वह पास न हो जाये, तब तक मेरी लज्जा दूर न होगी। मुझे यही कलंक रहेगा कि मैं उसे पास न करा सका।'

'ये फिजूल के भाव हैं, इनमें कुछ नही रखा है। तुम अपनी पढाई में मन लगाओ, तुम्हारा फर्स्ट आना जरूरी है !

आदम को स्वर्ग से निकाल दिया गया था, क्योंकि उसने ज्ञान का फल पाया था। अशोक को स्वर्ग से निकाल दिया गया, क्योकि वह ज्ञान का फल न पा सका !

यह मन भी कैसी अजीब शह है। अशोक ने सोचा, जो नही मिलता उसी की ओर दौड़ता है। नही तो क्या कारण है कि सब कुछ भूल-बिसार कर पढ़ाई में न लग सका, एम० ए० मे फर्स्ट क्लास न पा सका !

पर मैंने अपनी करनी मे क्या कसर रखी थी, दिन-रात तो पढ़ा था, भाग्य पर मेरा क्या वश ?

भाग्य पर, या मन पर ?

क्यो, मन पर क्यों ?

अशोक को अंधेरे में दो-चार बल्ब जलते दिखाई पड़े।

रोज शाम को वह पढते-पढते ऊबकर टहलने निकलता था, ताजा होने के लिए टहलते-टहलते वह बाबा के घर की सड़क पर आ जाता, और आते-जाते घर पर नजर डालता जाता। कभी-कभी बाबा दिख जाते तो वहीं से पताका की तरह अपना हाथ उठाकर कहते : 'अशोक, भूलना मत फर्स्ट क्लास !'

गैलरी मे आते-जाते बाबा उसकी पीठ थपथपाकर कहा करते : 'पढो अशोक, पढ़ो !'

और सीढ़ियों पर जगमगाती रहती वह मुस्कान, अमिता की मुस्कान !

और हां, टहलते-टहलते जब वह देखता कि बाबा टेनिस खेल रहे हैं, तो, तो…

अशोक को याद आई वह हिचक, वह डगमगाती मुद्रा, जैसे वह चोरी कर रहा हो।

अचानक जैसे बिजली कौंध गई।

अशोक ने पहचाना कि उसकी उस हिचक का जन्मदिन यही है, उस हिचक का जो टेलीफोन उठाते समय उसने अनुभव की थी, जो सिनेमा-हाल से निकलने पर वह अनुभव करता था, जो बाबा को देखते ही उसकी रग-रग मे समा जाती थी।

अशोक ने एक लम्बी सास ली।

एक और बल्ब !

उस दिन गोष्ठी मे जब वह कविता सुन चुका तो कुमार साहब बोले, 'क्या बात है, अशोक जी, आजकल आपकी कविता मे इतना दर्द क्यों आ गया है ?'

'मध्यवर्गीय कुण्ठा समझिये।'

हां, ठीक है, वह कुण्ठा ही थी, जो उसकी कविता में उसके अध्ययन में उसके जीवन मे समा गई थी। कुण्ठा शोक से भी ज्यादा करुण और विकट होता है ! क्योंकि उसमें चरमबिन्दु नही आता। पीडा होती है, पीड़ा का शिखर नही।

करुण और विकट—तीसरा बल्ब।

उस दिन अशोक क्लास में आकर अपनी सीट पर बैठा तो अचानक उसकी नजर डेस्क के ऊपरी सिरे पर गई। काली पेन्सिल की लिखावट लकडी के उस श्याम डेस्क पर इसलिए दिखाई दे गई कि उस पर पास की खिडकी मे आती धूप की किरणें पड रही थी।

लिखे थे सिर्फ तीन शब्द : अशोक चन्द्र गुप्त !

अशोक ऐसे झनझना उठा जैसे हाथ में छूटने पर सितार झनझना जाती है।

यह लिखावट वह पहचानता है, 'एस' के' और 'सी' की यह बनावट कितनी विशिष्ट है !

पर क्यो, अमिता मेरा नाम क्यो लिख गई है ?

उसने रूमाल निकाला और नाम रगड़ कर मिटा दिया।

उस दिन रात को देर तक वह हाथ मे किताबें लिए वही लिखावट मिटाता रहा।

दूसरे दिन अनायास ही उसकी नज़र उसी कोने पर पड़ गई। उसकी प्रत्याशा को पूरा करती हुई एक लिखावट वहां मौजूद थी . अशोक भाई साहब !

उसने रूमाल निकाला और फिर वह लिखावट मिटा दी !

शाम को बावा टेनिस खेल रहे थे और अशोक गम्भीर स्वर में अमिता से पूछ रहा था : 'आप ने मेरा नाम क्यों लिखा ? क्या सोचकर ?'

अमिता काप गई। कांपी थी न ?

'ओह, वह ! वह कुछ नही। बैठे-बैठे मन नहीं लग रहा था, तो पेन्सिल ही चलाने लग गई।'

'पर मेरी सीट पर क्यो लिखा ?'

'अरे, तो क्या आपको मालूम नही। वही तो मेरी सीट है। आपकी क्लास से पहले हमारी अंग्रेजी की क्लास भी तो वही होती है।'

अशोक के बल धीरे-धीरे खुल गए।

अगले दिन जब उसने फिर डेस्क पर 'अशोक भाई साहब' लिखा देखा तो उसने रूमाल से मिटाकर लिख दिया था—

क्या लिख दिया था ?

झिझको मत, छुपाओ मन, स्वीकार करो। बोलो क्या लिखा था ?

कौन पुलकन में उमग कर
लिख गई हो नाम मेरा !

दूसरे दिन वही पर वही पंक्ति बंगला के अक्षरो में लिखी थी !

उस दिन रात तो उसने बड़ी देर तक कोशिश की इस पंक्ति को टेक

बनाकर वह एक गीत की रचना करे, पर कुछ चील-बिलौओ के अलावा कुछ हाथ न लगा।

'पढो अशोक, पढो !'

'पढता तो हू, रात दिन तो पढता हूं, और कैसे पढू !'

'पढती तो हू, पर कुछ अच्छा नही लगता।' अमिता ने कहा था।

लाइब्रेरी मे जब वह कोई किताब खोज रहा था तब बाबा ने एक दिन उसे बताया था कि आज कल अमिता की तबीयत ठीक नही रहती, सिर मे बराबर दर्द बना रहता है, यही हाल रहा तो इस साल इम्तहान नही देगी।

और उसके बाद जब उसे अमिता से बातें करने का अवसर मिला था तो उसने पूछा था : 'सुना है, आजकल आपने पढना छोड़ दिया है ?'

'आप नही, तुम !'

'अच्छा, तुम ही सही, पर पढ़ती क्यों नही ?'

'पढती तो हू, पर कुछ अच्छा नही लगता !'

'क्यों ?'

'तबीयत नही करती।'

'क्यो ?'

'जीने को मन नही करता।'

'क्यो ?'

'मरना चाहती हू।'

अशोक जोर से हस पडा था : 'तुम भी न जाने क्या कहती हो। इस उम्र मे मरना, छिः ! छिः !!'

और फिर गम्भीर बनकर जोड़ा था, 'यह पागलपन है। ऐसी हंसी भी ठीक नही।'

'पर मैं हंसी नही करती, मैं सच कह रही हूं।'

'क्या सच कह रही हो ?'

'यही कि लडकियों को शादी के पहले ही मर जाना चाहिए।'

'तो फिर शादियां कैसे होंगी ?'

और दोनों की सम्मिलित हंसी में वह प्रसंग उड़ गया था।

ताश का घर बनते समय हमारे हाथ कैसे काप रहे होते है, और मन जैसे डरता रहता है कि अब गिरा, अब गिरा, फाइनल परीक्षा के दिनों में अशोक की भी यही हालत थी।

फर्स्ट आया तो सब ठीक है। सब कष्ट दूर हो जायेंगे। यह निष्कासन, यह अकेलापन, यह अभाव, यह नि स्वता।

और, और आई० सी० एस० का पथ प्रशस्त हो जाएगा।

पर, घर ताश का था, गिर गया !

अशोक, सेकिण्ड क्लास भी न पा सका।

घण्टों वह शीशे मे अपना चेहरा देखता रहता था।

जब मै इस कॉलेज मे आया था तो सर्वोत्तम विद्यार्थी था अपनी कक्षा का, और—आज मैं 'थर्ड डिवीजन' मे पास हुआ हू !

'क्यो, आखिर क्यो ?'

नही, यह नही हो सकता। मेरे पर्चे तो ठीक हुए थे, मेरी पढ़ाई मे तो कोई भी कमी न थी। जरूर कही कोई गलती है।

उसने रजिस्ट्रार को फीस भेजकर अर्जी दी, मेरे नम्बर फिर से जाच लिए जाएं।

छुट्टियों-भर वह मुह चुराता रहा, परिचितों से कतराता रहा, और डाकिये का इन्तज़ार करता रहा।

डाकिया आया, पर सौभाग्य नही। जाच करके पता चला था, नम्बरों मे कही कोई भूल न थी।

नही, वह रोयेगा नही, वह दिल छोटा नही करेगा।

क्या हुआ है, मुझे क्या हुआ है ? मेरी जिन्दगी मेरी मुट्ठी मे है, मैं स्वयं अपना भाग्य-विधाता हूं। देख ले, यह दुनिया मुझे सब कुछ से वंचित करके देख ले, मैं हारूंगा नही। एक दिन जीतकर रहूंगा।

दिन आएंगे, आएगी जय
जो कहता हूँ, होगा निश्चय
माना, मैं हूँ जगदीश नहीं, पर अपना भाग्य-विधाता हूं !
मैं ही अपना निर्माता हूं ।

उसी आवेश मे उसने साइकिल उठाई और विमल के यहां जा पहुंचा ।

घर में कोई नही था ।

वह चक्कर काटकर पिछवाड़े की ओर गया तो ठाकुर खड़ा निर्मला के नौकर से बातें कर रहा था ।

'क्या घर में कोई नहीं है ठाकुर ?'

'बाबा हैं ।'

'कहा ?'

'आप लान में बैठिए, अभी आते है ।'

वह लौटकर लान मे आया, और एक मूढा घसीटकर बैठ गया ।

ठाकुर आकर एक ट्रे मे चाय रख गया ।

थोड़ी देर बाद बाबा आए । पोर्च से ही बोले : 'ओ अशोक !'

फिर लान मे आकर मूढे पर बैठ गए ।

चाय पियोगे ?

उसने सिर हिला दिया ।

बाबा ने उसका उत्तर जानने के लिए उसकी ओर देखा, तो देखा, अशोक की आखो से आंसुओं की धार बह रही है ।

शान्ति ! शान्ति नही, सन्नाटा !

अशोक ने रूमाल निकालकर आखें पोंछी, मुंह साफ किया, और भर्राए गले से कहा : 'बाबा, यह क्या हो गया !'

'जो तुम डिजर्व करते थे ।'

अशोक धक् से रह गया । उसके करुण उद्गार ओठों से वापस मन में लौट गए ।

'तुमने मेरे कहने पर कभी ध्यान दिया था ? मुझे तुमसे कोई सहानुभूति नही है । जितनी सुविधाएं सम्भव थी, सब मैंने तुम्हे दी, कॉलेज से भी दिलाईं, पर तुमने उनसे कोई लाभ न उठाया । कविता अपनी जगह

ठीक है, पर ऐसी भावुकता किस काम की जो इन्सान को चौपट कर दे। मुझे तुमसे न जाने क्या-क्या आशाएं थी। सारा कॉलेज तुम्हारी ओर आखें लगाए था। तुमने हम सबको निराश किया है। यही नही, तुमने अपना जीवन बरबाद कर लिया है !'

यह बात क्या है जो अशोक का मन कड़ा पड़ता जा रहा है ! बाबा क्या कुछ गलत कह रहे हैं ? फिर क्यों लग रहा है कि बाबा की जगह कोई और बोल रहा है ?

'अब तुम्हे कोई कन्सीडरेशन दिलाना तो मुश्किल है। पर अब भी मेरी तुम्हें यही सलाह है कि किसी दूसरे विषय मे एम० ए० लेकर फिर से इम्तहान दो और फर्स्ट डिवीजन पाने की कोशिश करो।'

'जी, ऐसा ही करूंगा।'

भगवान तुम्हारा भला करें।

और वह उठा, साइकिल सम्भाली, और चला आया।

अशोक नही जानता, उसे क्या हो गया है ! उसे बाबा पर क्रोध आ रहा है।

क्रोध ? बाबा पर क्रोध ?

हां, आप ही ने मुझे बरबाद किया है, आप ही ने मुझे पथ-भ्रष्ट किया है। मैं जब आया था तब कितना तेजस्वी था, मन मे कितनी उमंगें थीं, भविष्य-पथ कितना उज्ज्वल था। आपने ही, आपने ही मुझे स्नेह के सब्ज-बाग दिखाकर, अपनत्व की मरीचिका दिखाकर मुझे वर्तमान मे सीमित किया, और फिर मेरी भावनाओं को गिन-गिनकर ठोकरें लगाई। मेरी अवनति के, मेरे इस घोर पतन के आप ही एकमात्र उत्तरदायी हैं !

और फिर आज, आज मैं जब पराजित और तिरस्कृत, आपसे दो बूदें पाने गया था सहानुभूति की, तो आपने मुझे इस तरह लताड दिया जैसे मैं कोई पराया हूं। फिर किस बल पर आपने कहा था : 'मैं तुम्हें अपना बेटा मानता हूं ! बेटा !' क्या पिता बेटे के साथ यही व्यवहार करता है ?

कहते हैं : 'फिर से पढ़ो, दूसरा एम० एस करो !' क्यो करूं ? नहीं करता मैं दूसरा एम० ए०। नहीं चाहिए मुझे फर्स्ट क्लास। नहीं

मैं आई०सी०एस० । क्या करूंगा मैं इन डिगरियों का और इन पदों का ? कौन है मेरा जिसके लिए यह सब करू ? मुझे इनकी क्या जरूरत है ? जिस दुनिया मे मेरी भावनाओ का आदर नही हो सकता, मैं उस दुनिया के नियम क्यो मानू ? मैं ऐसी दुनिया मे नही रहूंगा । मैं चला जाऊंगा, दूर, बहुत दूर--जहा मुझे इसका ध्यान दिलाने वाला भी कोई न हो कि मैं कौन हू , क्या था, क्या हो गया और किसने कर दिया । मै नये सिरे से अपनी जिन्दगी शुरू करूगा !

मैं दुनिया को नही बदल पाया ! मै बाबा के मन को नही बदल पाया, मैं अपने भाग्य को नही बदल पाया ! कोई चिन्ता नही, मैं अपने आपको बदल डालूगा ! आज तक जो था, वह नही रहूगा, आज से एक नये अशोक का जन्म हुआ है । अशोक ! मैं शोक नही करूगा ।

अशोक छटापटा उठा, नई हवा के लिए, नये स्थान के लिए । यहाँ, इस जगह मे अब वह एक पल भी नही रहना चाहता ।

बन्द गली मे चलते-चलते जैसे अचानक वह एक प्रशस्त मार्ग पर पहुच गया हो—दूर तक फैली सपाट, सीधी सड़क, जिसके दोनो ओर विद्युत् दीपो की पातें हैं—जहा मार्ग टटोलना नही पड़ता, जहा गति की कोई बाधा नही !

क्या वह दैवी सकेत था ?

उसने अखबार खरीदकर कब पढा था ? ऐसी विलासिता के लिए उसके पास पैसे ही कहा थे ? पर उस दिन सवेरे जब नीचे गली मे हॉकर पुकार रहा था, तो वह न जाने क्यों, धड़धड़ाता उतरा और एक प्रति खरीद लाया 'हिन्दुस्तान टाइम्स' की ।

और जैसे उन पक्तियो में चुम्बक हो, उसकी पहली ही नजर एक विज्ञापन पर पडी—कलकत्ते के एक हिन्दी साप्ताहिक को आवश्यकता है—एक प्रधान सम्पादक की, जो···

इक्कीस वर्ष का वह नवयुवक प्रधान सम्पादक बनेगा ? पर, उसके मन में कोई हिचक न थी, कोई शका न थी । उसी दिन उसने आवेदन-पत्र भेज दिया ।

और, अशोक को याद है, उसने बडी फुरफुरी अनुभव की थी, जब लिखा था कि प्रार्थी को बंगला का अच्छा ज्ञान है, और उसने बंगला से हिन्दी मे बहुतेरे अनुवाद भी किए है।

दिवा-स्वप्न तो उसके स्वभाव का अंग ही था। उन पन्द्रह दिनो मे वह आते-जाते, उठते-बैठते रोज स्वप्न देखता था कि उसे सम्पादक का पद मिल गया है, और वह इस सकीर्ण क्षेत्र से निकल कर एक नई दुनिया में पहुंच गया है जो कलम की नोक पर टिकी है। इस संकीर्ण क्षेत्र से, जहा प्रतिभा का आदर नही है, डिग्री का है; जहां भावना का आदर नही है, धन का है; जहां स्नेह का आदर नही है, उपलब्धि का है।

और बचपन से लगाकर अब तक, जीवन मे पहली बार उसका दिवा-स्वप्न सच निकला।

एक दिन डाक से उसे बुलावा मिला ? साप्ताहिक के सम्पादक-पद के लिए 'इन्टरव्यू' का बुलावा।

बुलावा 'इन्टरव्यू' का ही था, पर उसने यही माना कि उसकी नियुक्ति हो गई है।

वह खुशी से नाच उठा था, भाग-भागकर उसने तैयारी की थी ! वह विदेश-यात्रा की तैयारी न थी, मुक्ति की तैयारी थी—उस अवसाद और घुटन से मुक्ति की, जिसने चार साल से उसे ग्रस रखा था।

अवसाद और घुटन—क्या इन चार वर्षों में उसे और कुछ नही मिला ?

और क्या यह अवसाद और यह घुटन उसे बाहर से ही मिले, क्या उसका मन तनिक भी दोषी न था ?

मुक्ति की उस घडी में वह हल्का हो आया था, उसकी कविता की कापियों से धूल झड़ गई थी, उसकी असफलताएं भी रंगीन हो उठी थीं।

अवश्य ही इसमे मेरा भी दोष होगा, व्यक्ति को कोई और नहीं गिराता, उसका अपना मन ही उसे गिरा देता है, भविष्य में अपने मन को सम्भालकर रखूगा—अडिग और निष्कम्प !

जाने के एक दिन पहले वह बाबा को इसकी सूचना देने गया। उसे स्वयं

आश्चर्य हुआ था कि उसकी कड़वाहट एकदम मिट गई थी, स्नेह-प्रसंगों की याद से उसका मन एक धुंधली माधुरी से भर उठा था।

पोर्च मे ही बाबा मिले : 'क्या अशोक !'

उसने समाचार दिया।

'मैं तुमसे सहमत तो नही हू। तुम्हारे कैरियर का अन्त उज्ज्वल होना चाहिए। पर शायद और कोई चारा नही है परिस्थितियो को देखते हुए शायद यही उचित है। असल में, यह एक ऐसा निर्णय है जो तुम्हे स्वय करना चाहिए।'

उसने बताया कि वह निर्णय कर चुका है।

'तो फिर ठीक है। मन लगाकर काम करना। लगन से हर क्षेत्र में सफलता मिल सकती है। फिर तुम तो कवि हो, पत्रकारिता तुम्हारे लिए उपयुक्त दिशा है।'

'उसका अन्तर भर आया। उसने झुककर बाबा के चरण छुए !

'भगवान तुम्हे सुखी बनाएं। मेरी मगल कामनाए तुम्हारे साथ हैं।'

और फिर उन्होने ठाकुर को आवाज लगाकर चाय मगाई, और बडे आग्रह से एक प्याला चाय पिलाई।

फिर बोले : 'कलकत्ते मे कहा ठहरोगे ?'

एक पल को उसका मन चमक उठा। क्या ! सफल होकर भी वह जो न पा सका, क्या असफल होकर पा जाएगा ! बाबा क्या उसे अपने यहा ठहराने की व्यवस्था करेंगे !

उसने धडकते दिल से उत्तर दिया : 'अभी तो इस बारे मे कुछ भी नही सोचा।'

'कोई चिन्ता नहीं। कलकत्ता बहुत बडी जगह है। वहां मेस है, और बासे है। कही भी रह लेना। तुम्हे कोई कठिनाई नही होगी। फिर तुम्हारा दफ्तर भी तो कोई इन्तजाम करेगा।'

एक मिनट वे कुछ सोच में डूबे रहे।

फिर बोले : 'मैं कुछ बंगाली लेखकों के नाम तुम्हे परिचय-पत्र दे दूगा, उनसे मिलकर तुम्हे खुशी होगी।'

'आपकी कृपा होगी।' उसने बुझे मन से कहा था।

'ठीक है। अभी तो मैं बाहर जा रहा हूं, एक काम से। कल कै बजे जाओगे ?'

'सवेरे नौ बजे।'

'अच्छी बात है, मैं रात को पत्र लिख दूंगा। तुम सवेरे जाने से पहले लेते जाना।'

'जी, अच्छा !'

बाबा उठे, बड़े दुलार से उसकी पीठ पर हाथ फेरा, फिर बोले : 'मुझे अभी जाना है ! तुम ?'

'मां को प्रणाम करके जाऊंगा।' उसने नि.सकोच कहा था।

बाबा पल-भर रुके, कुरते की जेब से पैकिट निकालकर एक सिगरेट जलाई, माचिस बुझाकर ऐश ट्रे मे डाली, एक कश लेकर धुआं छोड़ा, फिर 'अच्छा, तो फिर' कहकर बाहर निकल गए।

अशोक बैठा दूर जाते हुए बाबा को देखता रहा। गेट पर जाकर जब वे दाहिनी ओर सड़क पर मुड गए और परकोटे की दीवार के पीछे छिप गए, तो वह खड़ा हुआ, और भीतर जाने के लिए चिक तक बढ़ा।

सन्नाटा !

घर मे जैसे कोई न हो !

वह ठिठक गया, और एक बार पोर्च के एक सिरे से दूसरे सिरे तक टहलकर फिर दरवाज़े पर आकर खड़ा हो गया।

वह चिक उठाने ही वाला था कि उधर से चिक उठी।

ठाकुर ! चाय के बर्तन उठाने आया था।

'कहिए मास्साब !' उसने हंसी मे मुंह फैलाते हुए कहा था।

'ज़रा विमल बाबू को भेज देना।'

'खोका बाबू तो नही है।'

'मीना ?'

'वे भी नहीं हैं। दीदी मनि भी गई हुई है।'

'मा ?'

'हा, वे हैं, लेटी हैं। भेंट करेंगे ?'

हा कहने से पहले अशोक हिचका। फिर उसे अचानक होश

अभी दरजी के पास से कपड़े लाने हैं।

'रहने दो।' उसने ठाकुर से कहा, 'सवेरे आऊंगा। मा पूछें तो कह देना।'

कितनी फुर्ती आ गई थी उस दिन उसमें! दरजी से कपड़े लेकर लौटा, सारा सामान पैक किया, मकान-मालिक को सूचना दी कि अगर कमरा छोड़ना पड़ा तो वहीं से चिट्ठी लिखेगा, तब उसका ताला वह तोड़ सकता है। प्रशान्त के घर जाकर उससे विदा ले आया, और फिर थकान के बावजूद हँसता-फूलता वह रात को सो गया। मन में हजारों कविताएं घुमड़ रही थीं जब उसकी आंख लगी।

दूसरे दिन सवेरे वह प्रफुल्ल मन से उठा था जल्दी-जल्दी तैयारी की थी और आठ बजते-न-बजते साइकिल पर सवार होकर बाबा की ओर चल पड़ा था। आज यह साइकिल भी लौटा आऊंगा, अब मुझे इसकी क्या जरूरत?

और अशोक को याद आया, साइकिल लेते समय उसे कैसा कष्ट हुआ था। उसे लगा था कि यह स्नेह का नहीं, दया का प्रतीक है!

उसे दया नहीं चाहिए। आज इस दया से मुक्ति मिल जाएगी!

दरवाज़े से विमल और मीना दिखाई पड़ गए थे, वे लान में फूल चुन रहे थे। उसने साइकिल पोर्च में खड़ी कर दी और विमल की ओर बढ़ा: 'कहो विमल, क्या हाल है?'

'नमस्कार मास्साब! बाबा आपके लिए दो चिट्ठियां दे गए हैं, मैं लाता हूं।' कहकर वह अन्दर दौड़ गया।

मीना बोली: 'मास्साब, आप कलकत्ते जा रहे हैं?'

'हां!'

'आपके बड़े ठाठ हैं।'

'क्यों?'

'कलकत्ता बहुत अच्छा शहर है, बहौत अच्छा! खूब मज़े रहेंगे आपके।'

'तुम चलोगी?'

'हमें कौन ले जाता है ?'

'क्यों, मेरे साथ चलो !'

'सब ऐसे ही कहते हैं मास्साब, ले कोई नहीं जाता', उसने मुंह फुलाकर कहा।

फिर बोली : 'कोई परवाह नहीं, मैं जब बड़ी हो जाऊंगी, तो अपने-आप चली जाऊंगी।'

'मुझे खबर कर देना, स्टेशन पर आ जाऊंगा।'

'क्या ठिकाना, तब आप कहां हों।'

तभी विमल ने लाकर दो लिफाफे उसके हाथ पर रख दिए।

बोला, 'मां ने कहा है, मिलकर जाएं।'

'चलो।'

आगे-आगे विमल और मीना, पीछे-पीछे अशोक। आज उसकी चाल में यह कैसा आत्म-विश्वास आ गया है !

मां ने कहा था : 'अशोक, तुमने अपना रास्ता चुन लिया, ठीक ही किया। कलकत्ता बड़ा शहर है, सहज ही तुम्हें उन्नति के अवसर मिल जाएंगे।

उस दिन चाय के साथ मिठाई भी थी।

विदा का क्षण निकट आ रहा है। अशोक चाय पी रहा है और इधर-उधर ताकता जा रहा है। कोई आहट, कोई झलक ?

प्याला रखकर उसने झुककर मां के पैर छुए : 'अच्छा मां, तो फिर जाता हूं !'

पैर छूकर वह तेजी से चल पड़ा, परदा उठाकर ड्राइंग रूम में आ गया, और बाहर के दरवाज़े की ओर बढ़ा।

फिर अचानक बड़ी तेजी से उसने अपना रुख बदला, और बगल का परदा उठाकर अमिता के कमरे में पैर रखा, पहली बार, और आखिरी बार !

'अरे आप !'

उसकी उस मुस्कराहट में उस दिन अशोक को एक वेदना की छाया दिखाई दी थी, नेपथ्य से आते संगीत-प्रभाव की-सी !

'अच्छा अमिता, मैं चल रहा हूं। अब तो शायद ही कभी भेंट हो।'

'हमें किस पर छोड़े जा रहे हैं?'

अशोक के तन-बदन मे कपकंपी छूट रही है। अमिता, यह पगली! यह क्या कह रही है!

पलक मारते अशोक ने अपने को सम्भाल लिया।

'क्यों, मा है, बाबा है, निर्मला है।'

'हा, सो तो हैं।'

अशोक ने कहना चाहा था, 'पर जरा मेरी तो सोचिए,' लेकिन नहीं कह सका।

'मै कविता-सग्रह छपाऊगा तो तुमको भेजूगा।'

'अच्छी बात है, एडीटर साहब!'

नही, नही, नही—रोको, पलकों को रोको—वह मुड गया और तेजी से चला आया।

पोर्च मे खडे बिमल से बोला : 'यह साइकिल रख लेना।'

नौ

> *'एकाकी ही है यह जीवन—*
> *इसमें विमल-बिछोह नहीं है!'*

अशोक को अनायास ही यह पक्ति याद आ गई; और ज्यों ही यह पक्ति याद आई त्यों ही वह चौंक उठा।

उसने चौंककर देखा कि महाजाति कालेज का कम्पाउण्ड जाने कहां चला गया है, और वह *सूनी सड़क पर न जाने किधर बढ़ता जा रहा है।*

अचानक अशोक को दिशा-भ्रम हो गया। पन्द्रह साल हो गए उसे कलकत्ता छोड़े, और इन पन्द्रह सालों मे यद्यपि वह तीन-चार बार कलकत्ते *आ चुका है, पर कलकत्ता इतनी तेजी से बढ़ता-बदलता रहा है* कि उसके

अनेक स्थलो को वह दिन में भी नही पहचान सकता।

फिर उस रात के वातावरण में तो वह जान ही न सका कि वह कहां है? न जाने कालेज कम्पाउण्ड कब और कहां रह गया।

उसने कलाई उठाकर घड़ी देखी—आठ बजकर दस मिनिट !

तब तो अभी वह ज्यादा दूर न आया होगा। कालेज कम्पाउण्ड यहीं कहीं आस-पास ही होगा। वह एक लैम्पपोस्ट के सहारे खड़ा हो गया कि कोई राहगीर आता-जाता हो तो कालेज की दिशा पूछ ले।

'कहां चलिएगा, बाबूजी !'

वह जिधर देख रहा था उसकी विपरीत दिशा से आकर एक टैक्सी चुपचाप उसके पास खड़ी हो गई थी।

अशोक ने बिना विचारे टैक्सी का दरवाजा खोला, और बैठकर बोला : 'चलो !'

'किधर चलगे ?'

'ऐस्प्लेनेड !'

कहते ही अशोक को लगा, यह क्या, मैं तो कालेज जा रहा था। पर टैक्सी वाले से दुबारा कुछ कहना अच्छा न लगा। उसने सोचा, चलो, ऐस्प्लेनेड ही सही ! थोड़ा घूम आता हूं।

सड़क के दोनों ओर प्रतिपल नये दृश्य आ-जा रहे थे, पर इन दृश्यों में अशोक को कोई रुचि न थी। वह सीट के तकिये पर सिर टेक कर बैठ गया; और आखें मूद ली।

चाहे खुली हवा मे आ जाने के कारण हो, या और किसी कारण से हो, उसके सिर का दर्द जा चुका था। बस, थोड़ी थकान, थोड़ा अनमनापन बाकी था।

उसकी मुदी हुई आखों के सामने कुछ पुराने दृश्य उभरे आ रहे थे।

हा, यही, करीब-करीब यही, मध्य जून का ही समय था जब वह मन मे विश्वास किन्तु ऊपर से उदासी लिए उस बादल-लदी सुबह मे हावड़ा के रेलवे स्टेशन पर उतरा था।

और उसकी आखें फट गई थीं, उसके होश गुम हो गए थे।

'अच्छा अमिता, मैं चल रहा हूं। अब तो शायद ही कभी भेंट हो।'

'हमें किस पर छोड़े जा रहे हैं ?'

अशोक के तन-बदन में कपकंपी छूट रही है। अमिता, यह पगली ! यह क्या कह रही है !

पलक मारते अशोक ने अपने को सम्भाल लिया।

'क्यों, मां है, बाबा है, निर्मला है।'

'हां, सो तो हैं।'

अशोक ने कहना चाहा था, 'पर ज़रा मेरी तो सोचिए,' लेकिन नहीं कह सका।

'मैं कविता-संग्रह छपाऊंगा तो तुमको भेजूंगा।'

'अच्छी बात है, एडीटर साहब !'

नहीं, नहीं, नहीं—रोको, पलकों को रोको—वह मुड़ गया और तेज़ी से चला आया।

पोर्च में खड़े विमल से बोला : 'यह साइकिल रख लेना।'

नौ

'एकाकी ही है यह जीवन—
इसमें विमल-बिछोह नहीं है !'

अशोक को अनायास ही यह पंक्ति याद आ गई; और ज्यों ही यह पंक्ति याद आई त्यों ही वह चौंक उठा।

उसने चौंककर देखा कि महाजाति कालेज का कम्पाउण्ड जाने कहां चला गया है, और वह सूनी सड़क पर न जाने किधर बढ़ता जा रहा है।

अचानक अशोक को दिशा-भ्रम हो गया। पन्द्रह साल हो गए उसे कलकत्ता छोड़े, और इन पन्द्रह सालों में यद्यपि वह तीन-चार बार कलकत्ते आ चुका है, पर कलकत्ता इतनी तेज़ी से बढ़ता-बदलता रहा है कि उसके

अनेक स्थलों को वह दिन में भी नही पहचान सकता।

फिर उस रात के वातावरण मे तो वह जान ही न सका कि वह कहा है ? न जाने कालेज कम्पाउण्ड कब और कहा रह गया।

उसने कलाई उठाकर घडी देखी —आठ बजकर दस मिनिट !

तब तो अभी वह ज्यादा दूर न आया होगा। कालेज कम्पाउण्ड यही कहीं आस-पास ही होगा। वह एक लैम्पपोस्ट के सहारे खड़ा हो गया कि कोई राहगीर आता-जाता हो तो कालेज की दिशा पूछ ले।

'कहा चलिएगा, बाबूजी !'

वह जिधर देख रहा था उसकी विपरीत दिशा से आकर एक टैक्सी चुपचाप उसके पास खडी हो गई थी।

अशोक ने बिना विचारे टैक्सी का दरवाजा खोला, और बैठकर बोला : 'चलो !'

'किधर चलगे ?'

'ऐस्प्लेनेड !'

कहते ही अशोक को लगा, यह क्या, मैं तो कालेज जा रहा था। पर टैक्सी वाले से दुबारा कुछ कहना अच्छा न लगा। उसने सोचा, चलो, ऐस्प्लेनेड ही सही ! थोडा घूम आता हू।

सड़क के दोनों ओर प्रतिपल नये दृश्य आ-जा रहे थे, पर इन दृश्यो में अशोक को कोई रुचि न थी। वह सीट के तकिये पर सिर टेक कर बैठ गया ; और आंखें मूद ली।

चाहे खुली हवा में आ जाने के कारण हो, या और किसी कारण से हो, उसके सिर का दर्द जा चुका था। बस, थोडी थकान, थोड़ा अनमनापन बाकी था।

उसकी मुंदी हुई आखो के सामने कुछ पुराने दृश्य उभरे आ रहे थे।

हां, यही, करीब-करीब यही, मध्य जून का ही समय था जब वह मन मे विश्वास किन्तु ऊपर से उदासी लिए उस बादल-लदी सुबह में हावडा के रेलवे स्टेशन पर उतरा था।

और उसकी आखें फट गई थी, उसके होश गुम हो गए थे।

इतनी भीड, इतने लोग !

और इनमे से एक भी उसका परिचित नही, एक को भी वह नहीं पहचानता।

बदहवास-सा जब वह स्टेशन से बाहर आया, और एक रिक्शे में बैठकर शहर की ओर चला, तो वह यह भी नही जानता था कि रिक्शे वाले को कहां ले चलने के लिए कहे।

और फिर याद आया . किस तरह उसने एक धर्मशाला मे जाकर एक कमरा पाया था, नहा-धोकर एक हलवाई की दुकान पर कुछ खा-पीकर 'देश सेवक' के दफ्तर की राह पूछता पहुचा था, और जब उसे बताया गया कि दोपहर तीन बजे आना है, तो और कुछ न सोच पाने के कारण वह एक ट्राम मे बैठकर विक्टोरिया मेमोरियम देखने चल दिया था।

तीन बजने पर जब वह फिर 'देश सेवक' के दफ्तर पहुचा तो चपरासी एक उड़ती निगाह उस पर डाली थी, और अपना काम बता देने पर अशोक ने अन्दर प्रवेश पाया था।

'सीधे हाथ के कमरे में।' उसने कहा था।

वह धीरे-धीरे कमरे की ओर गया था और अपना नाम बताकर खड़ा हो गया था।

'आइए, आइए अशोक जी !'

पत्र के डाइरेक्टर खेमका जी की आवभगत से उसे अचरज मे डाल दिया था।

'मैं आपको अच्छी तरह जानता हू।' खेमका जी ने कहा था, 'आप की कविताए, आपके लेख मैं बराबर पढ़ता रहा हू।'

उसने स्वप्न मे भी आशा न की थी कि सैकडो मील दूर इस नगरी मे उसे आते ही अपनी रचनाओं की प्रशसा सुनने को मिलेगी।

और फिर सब आसान हो गया था।

'आपको कुछ अजीज लग रहा होगा। असल मे यह इन्टरव्यू तो सिर्फ नाम के लिए थी। हमने आपके अलावा और किसी को नहीं बुलाया। आप अपने को नियुक्त समझें और कल सवेरे से काम सम्भाल लें।

उसके लिए एक कमरे की व्यवस्था करना भी खेमका जी न भूले थे।

सेन्ट्रल एवेन्यू की एक विशाल हवेली में उसे उसी शाम को एक कमरा किराये पर मिल गया था !

कैसे स्फूर्तिदायक संयोग थे, कैसी अजीब निराशाओं के बाद ।

वह कलकत्ता वासी हो गया था ।

दिन-भर दफ्तर मे काम करता, शाम को घूमता या सिनेमा देखता । पर रात को घर लौटने पर उसका मन न जाने कैसा हो आता !

और जब नींद न आने के कारण वह अपनी कविताओं की कापी निकालने के लिए पिटारी खोलता तो उसे दिखाई पड़ जाती, इत्र की शीशियां जो न जाने कब उसने उठाकर रख दी थीं ।

वह कविताएं पढ़ता, और कमरा महक उठता ।

वह कविता लिखता, और शब्द मुस्करा उठते ।

और वह मुस्कराहट फैलती जाती, कापी का पन्ना उससे भर जाता, और अशोक एक गुदगुदी के साथ अनुभव करता मानो कापी पर अमिता का मुस्कराता चेहरा उभर आया है, मानो इस जन सकुल विशाल नगरी में वह अकेला होकर भी नितान्त अकेला नहीं है । एक मन उसका साथी है ।

मन न सही, उसकी याद ही सही ।

अशोक ने पहली बार यह चेतना प्राप्त की कि परिस्थितियों के बदलते ही हमारी भाव-प्रतिक्रिया भी बदल जाती है ।

जब वह कलकत्ते आने के लिए ट्रेन में बैठ चुका था, और ट्रेन चल दी थी, तो उसका मन कैसा हल्का हो गया था, जैसे विषाद की कोई चादर उसके व्यक्तित्व पर से उतर गई हो ।

और सारे रास्ते वह अपने पिछले चार वर्षों के जीवन का पुनरावलोकन करता आया था ।

एक-एक घटना उसे याद आती, और वह टीस उठता !

अपने सपने उसे याद आते और वह पागलों की-सी हंसी हंस उठता !

अपनी असफलता उसे याद आती और क्रोध से उसका दम फूलने लगता !

पर कलकत्ते आकर अपने नये कार्य-क्षेत्र मे प्रवेश करते ही वे भाव, वे यातनाएं, वह उदासी जैसे जादू से तिरोहित हो गयी थी । वह जानता

'एक परिचित स्थान से मिलने का सुख परिचित मित्र से मिलने का-सा ही होता है।' अशोक ने सोचा।

अरे, यह बाजार नया बना है, उन दिनों नहीं था। उन दिन तो यहां पत्र-पत्रिकाओं के हॉकर बैठे रहते थे।

हा, वे रहे। बस छतरी के नीचे।

अशोक बढा ही था कि स्तम्भित रह गया, जैसे सांस निकल गई हो।

यही, हां यही तो उसने 'सचित्र साप्ताहिक' का वह अक देखा था, जिसमे अमिता का, मिस अमिता मैत्र का वह मुस्कराता चित्र छपा था, मिस अमिता मैत्र का, जिसने यूनिवर्सिटी मे 'टॉप' किया था।

अशोक के हाथ आनन्द की हिलोर से कांप उठे थे कि अखबार हाथ से छूट पड़ा था। उसकी हालत ऐसी ही थी जैसे उसके नाम कोई बड़ी लाटरी निकल आई हो।

दफ्तर आते ही उसने अमिता के नाम एक बधाई का पत्र भेजा था, एक नीला लिफाफा!

प्रिय अमिता,

अभी-अभी मैंने 'सचित्र साप्ताहिक' में तुम्हारीं फोटो देखी। तुम्हारी विलक्षण सफलता पर, नही जानता, तुम्हें किन शब्दों मे बधाई दू! तुमने फर्स्ट क्लास ही नही पाया, सर्वोत्तम स्थान पाया है, इस खबर को पढकर मेरे आनन्द की सीमा नही है।

काश! आज मैं तुम्हारे पास होता! इस अभूतपूर्व सफलता से तुम कितनी प्रसन्न होगी, कैसी मुस्करा रही होगी, यह देख पाता तो कृतार्थ हो जाता।

जब से कलकत्ते आया हूं तभी से तुमको और बाबा को पत्र लिखने की सोचता रहा हूं, पर यह देश अभी इतना नया लग रहा है, और मैं अभी इतना उखडा-उखड़ा हू कि सोचता ही रह गया।

लेकिन ऐसा आनन्ददायक समाचार पाकर बिना लिखे कैसे रह सकता हू। मेरी अनन्त बधाइया स्वीकार करो!

था कि वह राज मार्ग पर आ गया है, और अब पीछे लौटना नहीं होगा।

और इस ज्ञान से ही वह मुड़कर पीछे देखने को लालायित हो जाता।

बाबा के प्रति उसके मन में कहीं-न-कहीं एक असन्तोष अब भी दुबका बैठा था, पर वह उनकी कृपा और उदारता की याद करता तो कृतज्ञ हुए बिना न रह पाता।

मीना, मचलती मीना जब याद आती तो उसके कानों में घूंघरू बज उठते।

विमल ? हां, विमल की याद तो थी ही, और मां के सरल वात्सल्य की भी।

पर सबसे बढ़कर, सबसे ऊपर और सबसे गहरी याद थी अमिता की, जिसने अपने स्नेह-फूलों से उसे लाद दिया, और जिसके व्यवहार में उसकी असफलता से रत्तीमात्र भी अन्तर न आया था।

और हालांकि अशोक ने उस स्नेह को कभी-किसी परिभाषा में बांधने की चेष्टा न की थी, पर वह जानता था कि ऐसा सच्चा, स्थायी स्नेह दुर्लभ होता है।

और उसके रोम-रोम से एक अव्यक्त आशीर्वाद प्रकट होने के लिए विकल हो उठता।

हफ्ता बीतते-न-बीतते उसने एक फोटो अपने बक्स से निकालकर अपने कमरे में टांग लिया था।

वह ग्रुप-फोटोग्राफ था बाबा के परिवार का, जो इन्दु बाबू और माला दी के प्रथम आगमन पर खींचा गया था, और जिसकी एक प्रति उसने इन्दु बाबू के सौजन्य से प्राप्त कर ली थी।

श्री-श्री श्री—एक कर्कश ध्वनि के साथ टैक्सी रुक गई। ड्राइवर ने कहा :'यहीं उतरेंगे या···'

'ठीक है।' कह कर अशोक ने खिड़की के बाहर नजर डाली, सामने 'मैट्रो' था।

वह उतर पड़ा और पैसे चुकाकर एक ओर हो गया।

'ऐस्प्लेनेड'—ट्राम जंक्शन !

'एक परिचित स्थान से मिलने का सुख परिचित मित्र से मिलने का-सा ही होता है।' अशोक ने सोचा।

अरे, यह बाजार नया बना है, उन दिनों नहीं था। उन दिन तो यहां पत्र-पत्रिकाओं के हॉकर बैठे रहते थे।

हां, वे रहे। बस छतरी के नीचे।

अशोक बढ़ा ही था कि स्तम्भित रह गया, जैसे सांस निकल गई हो।

यही, हा यही तो उसने 'सचित्र साप्ताहिक' का वह अंक देखा था, जिसमें अमिता का, मिस अमिता मैत्र का वह मुस्कराता चित्र छपा था, मिस अमिता मैत्र का, जिसने यूनिवर्सिटी में 'टॉप' किया था।

अशोक के हाथ आनन्द की हिलोर से कांप उठे थे कि अखबार हाथ से छूट पड़ा था। उसकी हालत ऐसी ही थी जैसे उसके नाम कोई बड़ी लाटरी निकल आई हो।

दफ्तर आते ही उसने अमिता के नाम एक बधाई का पत्र भेजा था, एक नीला लिफाफा!

प्रिय अमिता,

अभी-अभी मैंने 'सचित्र साप्ताहिक' मे तुम्हारी फोटो देखी। तुम्हारी विलक्षण सफलता पर, नही जानता, तुम्हें किन शब्दों मे बधाई दू! तुमने फर्स्ट क्लास ही नही पाया, सर्वोत्तम स्थान पाया है, इस खबर को पढ़कर मेरे आनन्द की सीमा नही है।

काश! आज मैं तुम्हारे पास होता! इस अभूतपूर्व सफलता से तुम कितनी प्रसन्न होगी, कैसी मुस्करा रही होगी, यह देख पाता तो कृतार्थ हो जाता।

जब से कलकत्ते आया हूं तभी से तुमको और बाबा को पत्र लिखने की सोचता रहा हूं, पर यह देश अभी इतना नया लग रहा है, और मैं अभी इतना उखड़ा-उखड़ा हूं कि सोचता ही रह गया।

लेकिर ऐसा आनन्ददायक समाचार पाकर बिना लिखे कैसे रह सकता हूं। मेरी अनन्त बधाइया स्वीकार करो!

नहीं जानता तुम इस पत्र का उत्तर दोगी या नहीं। शायद बाबा पसन्द न करें। सच पूछो, तो मुझे यह बात बराबर खटकती रही है कि मुझ पर हर तरह की कृपा-दृष्टि रखते हुए भी बाबा ने मुझे तुम से दूर रहने के लिए क्यों बाध्य किया। जो हो, वे बड़े हैं और मेरे मन में उनके लिए गहरा आदर है।

और फिर अब तो वह दिन भी शायद दूर नहीं है जब तुम्हारा विवाह हो जाएगा। मैं सोचता हूं, तब तुमसे मिलने और बात करने में शायद इतनी बाधा न रहे।

मेरा कविता-संग्रह शीघ्र ही प्रेस में जाने वाला है। यदि तुम्हें आपत्ति न हो, तो वह तुम्हारे नाम समर्पित करना चाहता हूं।

हो सके तो उत्तर भेजना। मेरे लिए तुम्हारे पत्र से बढ़कर और कोई सुख नहीं हो सकता।

भगवान करे, तुम्हारा समस्त जीवन ऐसा ही आनन्दमय हो!

तुम्हारा
अशोक

अशोक के चेहरे पर दर्द की रेखाएं साफ झलक रही हैं, उसका मुंह विकृत हो आया है। लगता है, वह कराहने ही वाला है, जैसे कोई कांटा चुभ गया हो और निकालने के प्रयास में चुभता ही चला जा रहा हो।

चुभे, और चुभे, इस दर्द से वह झिझकेगा नहीं, यह कांटा वह निकाल कर ही रहेगा।

पर यों खड़े रहने की क्या ज़रूरत है?

गिनती के वे दस डग वह लौट कर आया, और टैक्सी-स्टैण्ड पर खड़ी एक टैक्सी में बैठकर बोला : 'चलो, महाजाति कालेज!'

अमिता को पत्र भेजने के बाद उसने अगले तीन-चार दिन कैसी उतावली में बिताए थे—पुलक-भरी बेचैनी में!

पहले दिन उसने 'सचित्र साप्ताहिक' से अमिता की वह फोटो काटकर अपनी मेज़ पर रख ली थी।

दूसरे दिन वह उस फोटो को फ्रेम में मढवा लाया था।

तीसरे दिन उसने वह फोटो अपने कमरे में लगा ली थी—बाबा के परिवार की ग्रुप-फोटो के साथ !

चौथे दिन वह दफ्तर से उठने ही वाला था तो उसे डाक से एक खत मिला।

पता देखते ही उसके रोंगटे खड़े हो गये—बाबा की लिखावट !

अशोक,

अभी-अभी अमिता ने मुझे वह पत्र दिखाया है, जो तुमने उसे बधाई देते हुए लिखा है। बधाई तो खैर ठीक है, पर पत्र को पढ़कर मुझे बहुत दुख हुआ है, और दुःख से भी ज्यादा रोष। उस पत्र की भाषा ही नहीं, उसके भाव भी अत्यन्त अनुचित है। मैं तुमसे ऐसी आशा नही करता था। तुम्हारे पत्र से मुझे बड़ा धक्का लगा है।

मेरा तुमको यह निश्चित आदेश है कि तुम भविष्य में अमिता को कभी कोई पत्र मत लिखना।

तुम्हारा
बाबा

अशोक को लगा कि जैसे वह टैक्सी मे नही, 'आपरेशन टेबिल' पर पडा है, इतना ही होश है कि आसपास कुछ सफेद छाया-मूर्तिया औज़ार ठीक कर रही है, और वह दम साधे, अपनी कराह दबाये सोच रहा है कि यह कैसा इलाज है जो यंत्रणा घटाने के बजाय बढ़ाये दे रहा है।

वह रात उसने कैसे गुजारी, उसे याद नही।

सवेरे ग्रुप-फोटोग्राफ उतार फेंका, अमिता का चित्र फाड़ डाला, और···

और जल्दी ही दफ्तर आया तो पाया, एक और पत्र उसकी टेबिल पर पडा है। बाबा की ही लिखावट है।

बाबा ने शायद अपना पत्र वापिस लिया है। शायद उन्होंने लिखा है कि उनसे भूल हो गई है।

खोलने की हड़बड़ी में लिफाफा फट गया। और पत्र पढ़कर उसका कलेजा भी।

घर पर आकर टैक्सी रुकी तो अशोक हंस पड़ा। वीणा को अमिता समझ बैठा—कुछ हद है इस बेवकूफी की !

भाडा चुकाकर वह तपाक से अन्दर बढ़ा !

'कहा चले गए थे ?' इतनी देर से रास्ता देख रहे है।' वीणा ने पूछा।

'कुछ नही, यों ही जरा भटक गया। आओ।'

'आओ नहीं, चलो।' वीरेन्द्र बोल उठा।

'क्यों ?'

'खेमका जी के यहां!

'बात यह हुई अशोक', वीणा ने व्याख्या की, 'मैंने शारदा को फोन किया कि हम लोग एक दिन रुक गए है, सवेरे मिलने आयेंगे, तो शारदा बोली, कल तो खेमका जी गौहाटी जा रहे हैं। रात को ही आओ डिनर पर। मैंने सोचा, चलो यह भी ठीक है, पकाने की झंझट बची।'

'गुड, अशोक बोला, 'तो दो मिनट ठहरो, मैं ज़रा हाथ-मुह धो लूं।'

दस

कविता-संजय आगे, वीणा, वीरेन्द्र और वह पीछे। टैक्सी चली ही थी कि अशोक बोला : 'अरे, मैं सिगरेट का पैकेट तो बाथरूम में ही भूल आया। अब ?'

'अब क्या !' वीणा बोली, 'रास्ते मे कहीं ले लेना।'

'अच्छा, यही सही।'

टैक्सी समान गति से दौड़ी जा रही है। बड़ी निर्जन सड़क है। शायद अभी बनी है। अशोक को कोई पहचान नही मिल रही है। वह आधे बन्द

मिस्टर अशोकचन्द्र गुप्त,

आपको कल एक पत्र भेज चुका हूं। मिला होगा। आप यह जान लें कि आपने मेरे और मेरे परिवार के सदस्यों का अक्षम्य अपराध किया है, और आपको हम लोगों ने जो विशेषाधिकार दिया था उसका अत्यन्त जघन्य और अनुचित उपयोग किया है। आखिर मेरी बेटी को पत्र लिखने का—*और इस प्रकार पत्र लिखने का—आपको क्या नैतिक अथवा कानूनी अधिकार है?* भविष्य में यदि आपने ऐसी हरकत की तो परिणाम अच्छा न होगा।

यदि आप मे कोई भी शालीनता बाकी हो तो कृपया अब कभी हम मे से किसी से भी न पत्र व्यवहार करें, न मिलने की चेष्टा करें। अपनी पुस्तक आप हम मे से किसी को समर्पित करने की चेष्टा न करें। आपने हमें समय-समय पर कविताएं और उपहार दिये हैं वे अलग डाक से लौटाए जा रहे हैं।

यदि आपने अब कोई पत्र लिखा तो वह बिना पढ़े फाड डाला जाएगा।

भवदीय

प्रफुल्लचन्द्र मैत्र

अशोक को लगा कि जैसे टैक्सी किसी गड्ढे में पडकर बड़ी जोर से उछली हो!

पलकें खोली तो—प्रकाश! ऐसी चौंध!!

उसके ऊपर न जाने कितनी 'कैण्डिल पावर' का बल्ब जल रहा है, वह 'आपरेशन टेबिल' पर चित्त पड़ा है, उसे अपनी सासें सुनाई पड रही है, और साफ दिखाई पड़ रहा है वह लाल, कुरूप, घिनौना घाव—जिस पर से फाहा हट चुका है!

हा, यही तो वह घाव है, जिसे लिए-दिए वह लडखड़ाता-घिसटता चलता रहा है···ये पन्द्रह वर्ष—ये लम्बे पन्द्रह वर्ष!

टैक्सी कॉलेज-कम्पाउण्ड के मोड़ पर धीमी हो गई थी।

सामने घर के पोर्च मे वीरेन्द्र खड़ा था, और पास यह कौन: अरे *अमिता! वह फिर कैसे आई?*

घर पर आकर टैक्सी रुकी तो अशोक हंस पड़ा। वीणा को अमिता समझ बैठा—कुछ हद है इस बेवकूफी की !

भाड़ा चुकाकर वह तपाक से अन्दर बढ़ा !

'कहा चले गए थे ?' इतनी देर से रास्ता देख रहे हैं।' वीणा ने पूछा।

'कुछ नहीं, यों ही ज़रा भटक गया। आओ।'

'आओ नहीं, चलो।' वीरेन्द्र बोल उठा।

'क्यों ?'

'खेमका जी के यहा!

'बात यह हुई अशोक', वीणा ने व्याख्या की, 'मैंने शारदा को फोन किया कि हम लोग एक दिन रुक गए हैं, सवेरे मिलने आयेंगे, तो शारदा बोली, कल तो खेमका जी गौहाटी जा रहे है। रात को ही आओ डिनर पर। मैंने सोचा, चलो यह भी ठीक है, पकाने की झंझट बची।'

'गुड, अशोक बोला, 'तो दो मिनट ठहरो, मैं ज़रा हाथ-मुंह धो लूं।'

दस

कविता-संजय आगे, वीणा, वीरेन्द्र और वह पीछे। टैक्सी चली ही थी कि अशोक बोला : 'अरे, मैं सिगरेट का पैकेट तो बाथरूम में ही भूल आया। अब ?'

'अब क्या !' वीणा बोली, 'रास्ते में कहीं ले लेना।'

'अच्छा, यही सही।'

टैक्सी समान गति से दौड़ी जा रही है। बड़ी निर्जन सड़क है। शायद अभी बनी है। अशोक को कोई पहचान नहीं मिल रही है। वह आधे बन्द

कांच से बाहर झाक रहा है। यह कौन-सा
तो इधर कभी नही आया।

'कितनी दूर है ?' उसने वीरेन्द्र से पूछा।

'अभी चैन से बैठे रहो। रेल लाइन के
बनी है। खेमका जी हाल ही मे शिफ्ट हुए है।'

'अच्छा ! मैं तो समझा सैन्ट्रल ऐवेन्यू मे

'तब से तो कई घर बदले। वह तो जेल
और अब तो अपना घर बनवा लिया है।'

'तुमने देखा है ?

रखा है। कॉफी

अशोक बेचैन है।
किसी दुकान की भी

'मैंने तभी कहा

वीणा हस दी।
आ जाएगा।

'बाजार तो नही', वीरे
जाएगी। थोडा सब्र करो।'

अशोक सब्र करना
लगती। पर सिगरेट से वह

और उसे याद आया, सि
भी, जहा लोग शराब तक
और एक छोटे-से कस्बे में
बैठा।

क्यों ?

क्योकि बाबा ने अपनाया न था।

और बाबा सिगरेट पीते थे।

अशोक को मजा आ रहा है। सिगरेट की
कैसी मजेदार व्याख्या की है ! आज तक तो कभी

ख्यान भी न गया ।

टैक्सी चली जा रही है, सूनी सीमेण्ट रोड पर फिसलती-सी। और अशोक की आंखों में यह हल्का अंधियारा, जिसमें बड़े-बड़े फासले पर लगे लैम्प-पोस्ट व्यर्थ-से लगते हैं, उसके मन में उभ्रानी के उस छोटे-से कस्बे को रूपायित करता है जहां उसने देश निकाले के वे वर्ष बिताए थे।

देश निकाला ?

हां, उसने उसे देश निकाला ही समझा था। बाबा के पत्रों ने उसके मन पर यही प्रभाव किया था कि एक बार फिर उसे घर से, अपने परिवार से दूर कर दिया गया। और उतने ही अकारण।

उसने तय कर लिया था, वह सब कुछ भुला देगा, भीड़ में खो जाएगा। आज तक के अपने सारे परिचितों के लिए मर जाएगा।

वह कलकत्ता छोड़ देगा, क्योंकि यहां का पता बहुतों को मालूम है, क्योंकि वह नहीं जानना चाहता कि उसे बंगला आती है, क्योंकि वह नहीं चाहता कि कभी बस या ट्राम में आते-जाते अचानक इन्दु बाबू या माला दी मिल जाएं, या क्या पता छुट्टी बिताने के लिए आए हुए बाबा के परिवार से ही भेंट हो जाए।

हां, कलकत्ते रहा तो यह खतरा सदा बना रहेगा, और उसे जीने नहीं देगा। यह आशंका उसका दम तोड़ देगी।

इतना बड़ा कलकत्ता।—जिसके प्रथम दर्शन पर उसकी आंखें फट गई थीं—जेल की एक कोठरी बन गया जिसमें सांसें लेना भी दूभर था, जिसके चारों ओर मानो नोंकदार कटहरा लगा हो।

और तब उभ्रानी ने उसे शरण दी थी, उसके अज्ञातवास को सफल बनाया था।

'लो, यहां सिगरेट ले लो।'

अशोक ने देखा, टैक्सी एक छोटी-सी दुकान पर रुक गई है। पीछे एक किनारे किसी बड़ी परन्तु जर्जर-सी इमारत की धुंधली रूपरेखा है, शायद कोई फैक्टरी हो।

वह उतर कर सिगरेट ले आया। उतावली से पैकेट खोलकर एक

काच से बाहर झांक रहा है। यह कौन-सा अंचल है। कलकत्ते का ? वह तो इधर कभी नही आया।

'कितनी दूर है ?' उसने वीरेन्द्र से पूछा।

'अभी चैन से बैठे रहो। रेल लाइन के पार चलना है। नई कॉलोनी बनी है। रोमका जी हाल ही में शिफ्ट हुए हैं।'

'अच्छा ! मैं तो समझा सैन्ट्रल ऐवेन्यू में ही रहते होंगे।'

'तब से तो कई घर बदले। वह तो जेल से लौटते ही छोड़ दिया था। और अब तो अपना घर बनवा लिया है।'

'तुमने देखा है ? कैसा है ?'

'बहुत आलीशान ! ऊपर के खण्ड में रहते हैं। नीचे का किराए पर दे रखा है। कॉफी आमदनी है।'

अशोक बेचैन हो रहा है। सिगरेट नही है। इस सुनसान सड़क पर किसी दुकान की भी उम्मीद नही।

'मैंने तभी कहा था, सिगरेट ले लू।'

वीणा हस दी। पाच मिनट में क्या हुआ। अभी कोई-न-कोई बाजार आ जाएगा।

'बाजार तो नहीं', वीरेन्द्र ने कहा, 'पर हा, सिगरेट तो मिल ही जाएगी। थोडा सब्र करो।'

अशोक सब्र करना चाहता है। बेचैनी उसे कभी भी अच्छी नही लगती। पर सिगरेट से वह हार मान चुका है।

और उसे याद आया, सिगरेट वह भला कब पीता था ! कलकत्ते में भी, जहा लोग शराब तक पीते है, वह सिगरेट पीने की सोचता भी न था, और एक छोटे-से कस्बे में रहते-रहते वह न जाने कब सिगरेट अपना बैठा।

क्यों ?

क्योंकि बाबा ने अपनाया न था। और···

और बाबा सिगरेट पीते थे।

अशोक को मजा आ रहा है। सिगरेट की अपनी लत की उसने आज कैसी मजेदार व्याख्या की है ! आज तक तो कभी इस बात पर उसका

ध्यान भी न गया।

टैक्सी चली जा रही है, सूनी सीमेण्ट रोड पर फिसलती-सी। और अशोक की आखों मे यह हल्का अधियारा, जिसमें बड़े-बड़े फासले पर लगे लैम्प-पोस्ट व्यर्थ-से लगते है, उसके मन मे उभ्भानी के उस छोटे-से कस्बे को रूपायित करता है जहां उसने देश निकाले के वे वर्ष विताए थे।

देश निकाला ?

हा, उसने उसे देश निकाला ही समझा था। बाबा के पत्रों ने उसके मन पर यही प्रभाव किया था कि एक बार फिर उसे घर से, अपने परिवार से दूर कर दिया गया। और उतने ही अकारण।

उसने तय कर लिया था, वह सब कुछ भुला देगा, भीड़ मे खो जाएगा। आज तक के अपने सारे परिचितो के लिए मर जाएगा।

वह कलकत्ता छोड़ देगा, क्योकि यहा का पता बहुतों को मालूम है, क्योकि वह नही जानना चाहता कि उसे बंगला आती है, क्योंकि वह नही चाहता कि कभी बस या ट्राम मे आते-जाते अचानक इन्दु बाबू या माला दी मिल जाए, या क्या पता छुट्टी बिताने के लिए आए हुए बाबा के परिवार से ही भेंट हो जाए।

हां, कलकत्ते रहा तो यह खतरा सदा बना रहेगा, और उसे जीने नही देगा। यह आशंका उसका दम तोड देगी।

इतना बडा कलकत्ता।—जिसके प्रथम दर्शन पर उसकी आंखें फट गई थी—जेल की एक कोठरी बन गया जिसमें सासें लेना भी दूभर था, जिसके चारो ओर मानो नोंकदार कटहरा लगा हो।

और तब उभ्भानी ने उसे शरण दी थी, उसके अज्ञातवास को सफल बनाया था।

'लो, यहां सिगरेट ले लो।'

अशोक ने देखा, टैक्सी एक छोटी-सी दुकान पर रुक गई है। पीछे एक किनारे किसी बड़ी परन्तु जर्जर-सी इमारत की धुंधली रूपरेखा है, शायद कोई फैक्टरी हो।

वह उतर कर सिगरेट ले आया। उतावली से पैकेट खोलकर एक

कांच से बाहर झांक रहा है। यह कौन-सा अंचल है। कलकत्ते का? वह तो इधर कभी नहीं आया।

'कितनी दूर है?' उसने वीरेन्द्र से पूछा।

'अभी चैन से बैठे रहो। रेल लाइन के पार चलना है। नई कॉलोनी बनी है। खेमका जी हाल ही में शिफ्ट हुए है।'

'अच्छा! मैं तो समझा सैन्ट्रल ऐवेन्यू मे ही रहते होगे।'

'तब से तो कई घर बदले। वह तो जेल से लौटते ही छोड दिया था। और अब तो अपना घर बनवा लिया है।'

'तुमने देखा है? कैसा है?'

'बहुत आलीशान! ऊपर के खण्ड में रहते है। नीचे का किराए पर दे रखा है। कॉफी आमदनी है।'

अशोक बेचैन हो रहा है। सिगरेट नही है। इस सुनसान सड़क पर किसी दुकान की भी उम्मीद नही।

'मैंने तभी कहा था, सिगरेट ले लू।'

वीणा हस दी। पाच मिनट में क्या हुआ। अभी कोई-न-कोई बाजार आ जाएगा।

'बाजार तो नहीं', वीरेन्द्र ने कहा, 'पर हा, सिगरेट तो मिल ही जाएगी। थोडा सब्र करो।'

अशोक सब्र करना चाहता है। बेचैनी उसे कभी भी अच्छी नही लगती। पर सिगरेट से वह हार मान चुका है।

और उसे याद आया, सिगरेट वह भला कब पीता था! कलकत्ते में भी, जहा लोग शराब तक पीते है, वह सिगरेट पीने की सोचता भी न था, और एक छोटे-से कस्बे में रहते-रहते वह न जाने कब सिगरेट अपना बैठा।

क्यों?

क्योकि बाबा ने अपनाया न था। और...

और बाबा सिगरेट पीते थे।

अशोक को मजा आ रहा है। सिगरेट की अपनी लत की उसने आज कैसी मजेदार व्याख्या की है! आज तक तो कभी इस बात पर उसका

आता।' अशोक का स्वर उदास था।

'अच्छा भई, न समझो, तुम्हारी राजी।'

टैक्सी अब किसी बस्ती में पहुच गई थी। कभी बाएं, कभी दाएं, बार-बार मुड़ती थी। आसपास के घर नए बने लगते थे। कहीं-कहीं इमारती सामान का ढेर बता रहा था कि घर बन रहे है।

तभी एक विशाल बगले के सामने जाकर टैक्सी रुक गई।

'अन्दर ले चलो', वीरेन्द्र ने ड्राइवर से कहा।

'अरे, यही ठीक है।' कहकर अशोक उतर पड़ा। सजय को नीद का झोंका आ गया था। वह उतरा तो मानो कि गिरा जा रहा हो।

गेट से घर तक का छोटा-सा रास्ता अशोक ने कुछ अनमने भाव से ही पार किया।

उसे लग रहा था कि उसका मन तुड़ाकर पीछे भाग रहा है—खेमका जी से यह भेंट सुखद न होगी।

कितना अच्छा होता कि वह घर पर लेटा होता और शाम से ही जो दर्द उमड-उमडकर ऊपर आता रहा है, उसके साथ और कुछ जूझ सकता। क्या पता, कल जब अमिता से भेंट होती तो वह पूर्ण सन्नद्ध और सहज हो सकता।

इसीलिए उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने पाया कि खेमका-दम्पत्ति की उपस्थिति में पहुंचते ही वह बिलकुल बदल गया है, उसके मन की उदासी बादल की तरह छट गई है, और वह खूब ठहाके मार-मारकर हस रहा है।

खेमका जी ने प्रसन्नता से कहा : 'वाह वीणा जी, मान गए आपको। आपने तो इनको बिलकुल बदल डाला है। पहले तो इनके ओंठों पर हसी भी मुश्किल से ही दिखाई देती थी।'

'नही, ऐसी तो कोई बात नही। मैं तो पहले भी ऐसा ही था।' अशोक ने हल्का-सा प्रतिवाद किया।

'जी हा, ऐसे तो थे ही?' खेमका जी ने तपाक से कहा, 'मालूम है आपको वीणा जी! जब ये पहले-पहल कलकत्ते आए थे तो बस कुछ न पूछिए, ऐसे लगते थे मानो···'

सिगरेट सुलगायी और वापस टैक्सी मे आ बैठा।

टैक्सी चल पड़ी। धुएं के छल्ले बाहर निकलते ही तेज हवा से टूट जाते थे।

अशोक ने याद किया, वे भी कैसे विचित्र दिन थे! अपने पिछले समस्त जीवन से कटकर वह मानो एक स्वप्न मे रह रहा था। दोनो में कोई सम्बन्ध का सूत्र न रह गया था।

और उसकी आखों मे झलक आया वह छोटा-सा प्रेस जिसका वह मैनेजर था, वह बेचारा-सा साप्ताहिक जिसका वह सम्पादक था, और वह एकमात्र 'पिक्चर पैलेस' जिससे उसे शिकायत थी कि एक ही फिल्म को हफ्तो घसीटता है।

कस्बे का वह होटल, जो ढाबे का ही संस्करण था, कैसा अजीब था। उसके वातावरण मे कैसा छोटापन था—वहा के लोग, वहा की बातचीत कैसी छोटी लगती थी।

वही उसे राजा मिला था। राजा, जिसका दिल सचमुच राजा था। उसी ने अशोक को पहली सिगरेट पिलाई थी।

'अब तो सिगरेट मिल गई, अब तो कुछ बोलो।' वीरेन्द्र कह उठा।

'रहने दो, कोई कविता सोच रहे होगे।' वीणा बोली।

'अरे भाभी, आप भी किस चक्कर मे पड़ी हैं। कविता क्या ऐसे सोची जाती है? क्यो भई अशोक?'

'मैं क्या जानू?' अशोक बोला, 'यह तो कोई कवि ही बता सकता है।'

'लगता है, अभी तक होश नही हुआ', वीरेन्द्र हंस पड़ा, 'मैंने कहा, इस तरह भूलने से काम नही चलेगा।'

अशोक भी हंस पडा: 'फिक्र क्या है, तुम जो साथ हो।'

'अरे, हमारी तुमने कब मानी है', वीरेन्द्र ने बनावटी खेद से कहा, 'हमको तो तुम हमेशा टरका देते हो।'

'पता नही तुम क्या कह रहे हो। मेरी तो कुछ समझ में नहीं

आता।' अशोक का स्वर उदास था।

'अच्छा भई, न समझो, तुम्हारी राज़ी।'

टैक्सी अब किसी बस्ती में पहुंच गई थी। कभी बाएं, कभी दाएं, बार-बार मुड़ती थी। आसपास के घर नए बने लगते थे। कहीं-कहीं इमारती सामान का ढेर बता रहा था कि घर बन रहे हैं।

तभी एक विशाल बंगले के सामने जाकर टैक्सी रुक गई।

'अन्दर ले चलो', वीरेन्द्र ने ड्राइवर से कहा।

'अरे, यही ठीक है।' कहकर अशोक उतर पड़ा। संजय को नींद का झोंका आ गया था। वह उतरा तो मानो कि गिरा जा रहा हो।

गेट से घर तक का छोटा-सा रास्ता अशोक ने कुछ अनमने भाव से ही पार किया।

उसे लग रहा था कि उसका मन छुड़ाकर पीछे भाग रहा है—खेमका जी से यह भेंट सुखद न होगी।

कितना अच्छा होता कि वह घर पर लेटा होता और शाम से ही जो दर्द उमड़-उमड़कर ऊपर आता रहा है, उसके साथ और कुछ जूझ सकता। क्या पता, कल जब अमिता से भेंट होती तो वह पूर्ण सन्नद्ध और सहज हो सकता।

इसीलिए उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने पाया कि खेमका-दम्पत्ति की उपस्थिति में पहुंचते ही वह बिलकुल बदल गया है, उसके मन की उदासी बादल की तरह छट गई है, और वह खूब ठहाके मार-मार कर हंस रहा है।

खेमका जी ने प्रसन्नता से कहा : 'वाह वीणा जी, मान गए आपको। आपने तो इनको बिलकुल बदल डाला है। पहले तो इनके ओठों पर हंसी भी मुश्किल से ही दिखाई देती थी।'

'नहीं, ऐसी तो कोई बात नहीं। मैं तो पहले भी ऐसा ही था।' अशोक ने हल्का-सा प्रतिवाद किया।

'जी हां, ऐसे तो थे ही?' खेमका जी ने तपाक से कहा, 'मालूम है आपको वीणा जी! जब ये पहले-पहल कलकत्ते आए थे तो बस कुछ न पूछिए, ऐसे लगते थे मानो…'

'मानो कोई फूहड़ गंवार हो ।'···अशोक ने वाक्य पूरा किया ।

'जी नहीं, गवार तो फिर भी अच्छा होता है, उसके पैर कम से कम ठोस जमीन पर तो होते हैं । ये तो वीणा जी, ऐसे लगते थे जैसे कोई बदहवास बच्चा हो । हमेशा हक्के-बक्के रहते थे, लिखते थे तो हाथ कांपते थे ?'

'अच्छा, यह तो आपन नई बात सुनाई !' वीणा को जैसे कोई नया ज्ञान मिला हो ।

'अब आपको क्या बताऊं तब इन्हे देखता था तो तरस आता था । ऐसी मासूमियत थी चेहरे पर कि बस !'

'यह लीजिए, रात-दिन पिलकर आपका साप्ताहिक खड़ा किया, और आप उसका यह इनाम दे रहे है !' अशोक ने पैंतरा बदला ।

'भई, सच्ची बात तो कहनी ही पड़ती है । हा, इसमे शक नही कि काम आप भूत की तरह करते थे । जो देखता, वही दातो तले उगली दबा लेता —डेढ़ हड्डी मे ऐसी जान !'

खेमका की आखों मे प्रशसा की चमक थी ।

'तभी तो भूत हो गए !' शारदा जी हंस पड़ी ।

'वाह भाभी, आपने भी हद कर दी । साकार आपके सामने बैठा हू— और आप कहती है—भूत हो गया ।' अशोक ने शिकायत की ।

'खैर, तुम गायब तो ऐसे ही हुए थे ।' खेमका जी बोले; 'रात को अच्छे भले बात कर रहे थे और सवेरे कही पता तक नही । चार-छ: दिन बाद दो लाइनो की चिट्ठी—'कलकत्ते में मन नही लगा तो चला आया । मेरी चिन्ता न करे ।' बहुत-से कवि देखे हमने, दो-चार बनाए भी है, पर ऐसा किसी को करते न देखा ।'

'अब बनाने को शायद मैं ही बाकी रह गया हू ।' अशोक ने भोलेपन से कहा ।

'अरे, तुमको हम क्या बनाएगे, तुम्हे तो वीणा जी ने आदमी बना दिया । हमें क्या मालूम नही है ? भूलना मत, हम तुम्हे लखनऊ मे देख आए हैं ।'

'अब कही तुमने सच्ची बात ।' शारदा जी बोली, 'मैं तो तब भी कहती

थी कि शोभा थी।

बहुत रात गए, जब कवि-सम्मेलन समाप्त हुआ, और वह सब-साथियों [illegible] कर नीचे उतरा तो सहसा किसी ने छूते हुए आकर उसे बांहों में भर लिया।

'अरे, रामप्रकाश, तुम!'

'हां, भई, तुमने तो खबर भी न दी।'

'अरे, यार, माफ करना, मेरे तो ध्यान से ही उतर गया कि तुम [illegible] में रहते हो।'

'क्यों नहीं, गरीबों का कौन ध्यान रखता है?'

'नहीं, ऐसी कोई बात नहीं। असल में अरसा हो गया [illegible], और इस बीच न जाने कहां-कहां घूमता रहा।'

'छोड़ो भी। चलो, घर चलो।'

अशोक ने बहुतेरे बहाने बनाए पर [illegible] था। जाना ही पड़ा।

पुरानी कविताएं याद नही रहती।'

'यह तो बुरी खबर है, भई।' खेमका जी ने चाल चली, 'इतने बड़े अफसर मत बन बैठना कि कविता से किनारा ही कर लो। क्यो वीणा जी, आप इस ओर ध्यान नही देती ?'

'और करती ही क्या रहती हू', वीणा ने हसकर कहा, 'इनकी कविता के मारे तो नाक मे दम है। मरी तभी आती है जब हमारा बाजार या सिनेमा का प्रोग्राम हो। कब घर-भर को हुकुम हो जाए : 'एकदम चुप', कोई ठीक है।'

'अरे सुना दो यार !' वीरेन्द्र ने आग्रह किया : 'मनामने मत कराओ।'

'सच, कोई याद नहीं है।' अशोक ने विवशता प्रकट की।

'याद नही है तो क्या हुआ', शारदा जी उठी : 'अभी याद आ जाती है।' और दौड़कर अशोक का काव्य-संग्रह ले आईं।

'अरे, छपी-छपाई कविता का क्या सुनना !' अशोक ने टालना चाहा।

'खाना खिलाया है, कोई मुफ्त में नहीं सुन रहे है।' शारदा जी ने तुरप फेंकी।

'तो खाने के बदले में कविता—यह कहां का न्याय है ?'

'अच्छा, बहुत हो गया।' वीणा ने कुछ अधीर होकर कहा : 'जल्दी से सुना दो, और चल दो—बच्चे उकता रहे है।'

अशोक ने प्रकट बेमन से पुस्तक खोलते हुए कहा : 'यह लीजिए, जहा खुल गई वही से सुना रहा हू। पर मुक्त छन्द की कविता है, मजा नहीं आएगा।'

'अब तो सभी मुक्त छन्द में लिखते है।' खेमका जी बोले : 'मुझे तो बहुत पसन्द है। आप बेधड़क होकर सुनाइए।'

'शीर्षक है', अशोक ने कहा : 'दर्द का टीका।'

'वाह, वाह, बहुत अच्छी कविता चुनी', शारदा जी ने उमग कर कहा : 'मैं कई बार पढ चुकी हूं। आज आपके मुंह से सुनना बहुत अच्छा लगेगा।'

अशोक पढ़ने लगा। शुरू की कुछ पंक्तिया उसने कुछ दबे और बुझे स्वर में पढी, मानो एकदम असंपृक्त कोई फर्जअदाई कर रहा हो। पर शीघ्र ही उसके स्वर में कम्पन आ गया, और कविता पूरी होते-न-होते वह

जो कि वीणा थी।

बहुत रात गए जब कवि-सम्मेलन समाप्त हुआ, और वह मच-मण्डली छोड़ कर नीचे उतरा तो सहसा किसी ने छूटते हुए आकर उसे बाहो मे लपेट लिया।

'अरे, रामप्रकाश, तुम !'

'हां, भई, तुमने तो खबर भी न दी।'

'अरे, यार, माफ करना, मेरे तो ध्यान से ही उतर गया कि तुम बदायू मे रहते हो।'

'क्यों नही, गरीबों का कौन ध्यान रखता है ?'

'नही, ऐसी कोई बात नही। असल मे अरसा हो गया कालेज छोड़े, और इस बीच न जाने कहा-कहा घूमता रहा।'

'छोडो भी। चलो, घर चलो।'

अशोक ने बहुतेरे बहाने बनाए थे पर रामप्रकाश कब मानने वाला था। जाना ही पडा।

और सवेरे काफी देर से जब वह सोकर उठा तो क्या देखता है कि जंगले से सूरज की किरणें उसके चारो ओर सुनहरा जाल बिछा रही हैं, और उस जाल को अपने अचल मे समेटे चाय की ट्रे हाथ में लिए रात की वही मुग्धा खडी है—मुस्कराती।

अशोक ने वह अद्भुत सिहरन जैसे फिर महसूस की। ओफ ! कितना अभिभूत हो गया था वह ! जैसे बादलो मे हो।

'लीजिए।'

क्या अशोक ने फिर सुना या सचमुच वीणा बोली ? एक झटके-से अशोक वर्तमान मे खुल गया। वीणा उसे मिठाई की प्लेट थमा रही थी।

हंसी-कहकहों मे भोजन समाप्त कर जब सब लोग बाहर आकर 'लॉन' मे बैठ गए तो खेमका जी बोले : 'हा, भाई अशोक, अब एक कविता हो जाए।'

'इधर बहुत दिनों से कुछ लिखा ही नही।' अशोक ने कहा : 'और

पुरानी कविताएं याद नहीं रहती।'

'यह तो बुरी खबर है, भई।' खेमका जी ने चाल चली, 'इतने बड़े अफसर मत बन बैठना कि कविता से किनारा ही कर लो। क्यो वीणा जी, आप इस ओर ध्यान नही देती ?'

'और करती ही क्या रहती हूं', वीणा ने हसकर कहा, 'इनकी कविता के मारे तो नाक मे दम है। मरी तभी आती है जब हमारा बाजार या सिनेमा का प्रोग्राम हो। कब घर-भर को हुकुम हो जाए: 'एकदम चुप', कोई ठीक है।'

'अरे सुना दो यार!' वीरेन्द्र ने आग्रह किया: 'मनामने मत कराओ।'

'सच, कोई याद नही है।' अशोक ने विवशता प्रकट की।

'याद नहीं है तो क्या हुआ', शारदा जी उठी: 'अभी याद आ जाती है।' और दौडकर अशोक का काव्य-सग्रह ले आईं।

'अरे, छपी-छपाई कविता का क्या सुनना!' अशोक ने टालना चाहा।

'खाना खिलाया है, कोई मुफ्त में नही सुन रहे है।' शारदा जी ने तुरप फेंकी।

'तो खाने के बदले मे कविता—यह कहा का न्याय है ?'

'अच्छा, बहुत हो गया।' वीणा ने कुछ अधीर होकर कहा: 'जल्दी से सुना दो, और चल दो—बच्चे उकता रहे हैं।'

अशोक ने प्रकट बेमन से पुस्तक खोलते हुए कहा: 'यह लीजिए, जहां खुल गई वही से सुना रहा हू। पर मुक्त छन्द की कविता है, मजा नही आएगा।'

'अब तो सभी मुक्त छन्द में लिखते है।' खेमका जी बोले: 'मुझे तो बहुत पसन्द है। आप बेधड़क होकर सुनाइए।'

'शीर्षक है', अशोक ने कहा: 'दर्द का टीका।'

'वाह, वाह, बहुत अच्छी कविता चुनी', शारदा जी ने उमग कर कहा: 'मैं कई बार पढ चुकी हूं। आज आपके मुह मे सुनना बहुत अच्छा लगेगा।'

अशोक पढने लगा। शुरू की कुछ पक्तियां उसने कुछ दबे और बुझे स्वर में पढीं, मानो एकदम असंपृक्त कोई फर्जअदाई कर रहा हो। पर शीघ्र ही उसके स्वर मे कम्पन आ गया, और कविता पूरी होते-न-होते वह

मानो कहीं और खो चुका था।

'कह नहीं सकता, आज यह बात प्रासंगिक रही कि नहीं
ओ मेरे जीवन्त क्षणों की रागिनी !
कि यदि मैं तुम्हें पा जाता तो मैं संसार का सबसे सुखी व्यक्ति होता,
फिर भी, कम से कम यह बात प्रासंगिक न भी हो, पर सच है
कि आज जब मैं तुम्हारी झलक से भी दूर हूं
मैं अपने लड़खड़ाते लयपथ चरणों से
सारा विश्वास खोकर भी उसी ओर जा रहा हूं
जिस ओर से तुम्हारी हलकी गूंज मुझे टेरती है
—यद्यपि मेरे मन को टेर लगाने वाली यह गूंज
किसी भद्र समाज में तुम्हारे संगीत-प्रदर्शन की गूंज है,
और तुम्हारे छनकर आते मीठे स्वर में
मुझे निमन्त्रण लगने वाली पुलक
तुम्हारी आत्मश्लाघा की पुलक है...
फिर भी मैं चलता चला आ रहा हूं
क्योंकि स्वर और संगीत किसी एक के नहीं होते,
उनसे मिलने वाली प्रेरणा मुट्ठी में नहीं बंधती।
और जब तालियों की गड़गड़ाहट में
तुम वर्तुल मुस्कान से खिल उठोगी
तब मैं तुम्हारे प्रकाशित मस्तक पर
अपने अप्रकाशित दर्द का टीका चढ़ा दूंगा ?
फिर बताओ : क्या होगा ?
मुस्कान तो मंत्र-बद्ध नागिन-सी फिर बन्द हो जाएगी,
तालियां भी रुक जाएंगी
क्योंकि ताली वाले हाथ जाने की जल्दी में होंगे,
और अपने गले में पड़े फूलहार को भी तुम उतार फेंकोगी
क्योंकि तुम्हें अपने प्राणों पर बोझ पसन्द नहीं है।
पर दर्द के उस टीके का तुम क्या करोगी ?

जो तुम्हें एक ही दर्पण में दीख सकता है
और वह दर्पण
मेरे मन में है !

कविता सुनाकर जब अशोक ने किताब एक ओर रख दी तो उसके माथे पर पसीने की बूंदें झलक रही थी।

वीरेन्द्र, खेमका जी, शारदा जी—सबने उसे बड़ी स्निग्ध दृष्टि से देखा। वीणा की आखों में मुग्ध भाव था।

अशोक एक क्षण उन्हे देखता रहा, फिर अचानक उठते हुए बोला : 'अच्छा, अब आज्ञा दें।'

ग्यारह

'आप नही चलिएगा ?' पीछे अटकते हुए वीरेन्द्र की ओर मुस्कराहट से देखते हुए अमिता ने पूछा।

'क्या कीजिएगा इस खजूर को ले जाकर ?' वीरेन्द्र ने हंसकर उत्तर दिया।

'देख लीजिए, कही फिर पछताएं। वीणा के कहने पर मैंने आज सूचिया बनाई हैं।'

'यह तो खैर अपने-अपने रस की बात है। सूचियों का मुझे कोई आकर्षण नही।'

'कैसे होगा ? आकर्षण क्या यो ही हो जाता है ? उसके लिए रुचि का विकास करना होता है।'

'क्या करें अमिता जी', वीरेन्द्र ने कुछ खीझकर कहा : 'जिस उम्र मे टेस्ट बनता है, उन दिनो आपसे मुलाकात ही न हो सकी।'

अमिता आज न जाने कैसे मूड मे थी। उसने तड़ाक से उत्तर दिया :

कलकत्ते की चौड़ी सड़क पर कार मानो तैर रही है। ढलते सूरज की किरणें अशोक को देख रही हैं। कार के अगले काच के एक कोने से आकर अमिता की कनपटी पर पड़ी रही हैं। उसके केश हल्की हवा मे लहरा रहे है। उसकी दृष्टि सामने है, ओठ एक मुस्कराहट में जमे हैं, और संजय को उसने एक कोहनी से पहलू में दबा रखा है।

कैसा अटपटा लग रहा है अशोक को।

कल गत इसी सड़क पर उसे कैसा कष्ट हो रहा था—निर्जन, अंधकार और कसैली मुट्ठियों के थपेड़ों ने उसे कैसा बेहाल कर दिया था।

और आज इस मुंदती सांझ में अमिता का सान्निध्य उसे कैसे मीठे मोह से रंग दे रहा है।

'एस्प्लेनेड ! यह सामने मैट्रो' है। लोग आ-जा रहे हैं कर्मरत लोग, विदेशी पोशाक मे सैलानी, छाता साथ लिए बड़े बाबू !

हां, यही कलकत्ता है जो अशोक का परिचित है ! जहां उसने टूटे हुए मन को एक पत्र की सम्पादकी मे उंडेल दिया था।

अशोक मन ही मन कह रहा है : जरूर नगर का भी अपना एक व्यक्तित्व होता है। यह वातावरण—यह परिवेश इसमें कुछ भी अनोखा या विचित्र नहीं, पर यह कलकत्ते की अपनी विशिष्टता है। मैं इसे कभी भी, कहीं भी पहचान ले सकता हूं—चाहे उसका वर्णन न कर सकूं।

'क्या सोच रहे हैं अशोक बाबू ?' अमिता से मौन तोड़ा : 'क्या रिजर्वेशन की फिक्र है ?'

'चलिए, यही मान लीजिए।' अशोक ने किंचित् हंसकर उत्तर दिया।

'तो उसकी फिक्र छोड़िए। आपके बराबर बड़ी अफसर तो नहीं हूं, पर मेरा भी एक छोटा-सा दफ्तर है। आपकी सीटें रिजर्व हो चुकी हैं, कोई तकलीफ नहीं होगी।'

'यह तुमने अच्छा किया, अमिता ! नहीं तो रात की यात्रा में बच्चे परेशान हो जाते।'

'पर जरा इन्हें तो देखो वीणा ! इनके मुंह से एक हल्का-सा 'थैंक्स' भी न निकला।' अमिता इतराई।

'रास्ते में कहीं माला मिल सके तो कार रोकिएगा।' अशोक बोला।

'अब पता चला आपको : 'आपने क्या खोया है ?'

'बात यह है अमिता जी', वीरेन्द्र कैसे चुप होता, 'खोया तो आदमी तभी करता है जब वह पा चुका हो। खोने की बात तो आप अशोक से ही करें।'

अचानक हसकर सब चुप हो गए। अशोक का चेहरा लाल हो आया। वह झट से दूर आसमान की ओर देखने लगा।

वीणा ने ही पहल की . 'अच्छा, अब चलो, इन गप्पों का क्या ठीक है। देर हो रही है।'

तभी कार का भोपू बोला।

'देखा अमिता, सजय को।' वीणा हसकर बोली : 'तुमने जरा और लिफ्ट दिया तो कार बिगाड़ कर धर देगा।'

अब तक सब कार के पास पहुच चुके थे। अमिता ने बढकर सजय को थाम लिया और उसे प्यार करती बोली . 'अच्छे लड़के बनो, अपने पिता की तरह मत बनो !'

और हसकर अशोक की ओर देखा।

अशोक से न रहा गया, बोला . 'यह कबका गुस्सा निकाल रही हैं ?'

'गुस्सा तो आप निकालेंगे', अमिता ने ड्राइवर की सीट मे बैठते हुए कहा . 'मै तो गुस्सा हुई नही थी।'

'यह तुमने ठीक कहा अमिता !' वीणा ने जोडा, 'इन्हे जब क्रोध आता है तो सब कुछ भूल जाते हैं।'

'वैसे ही क्या याद रखते है ?' अमिता ने हसकर कहा : 'सिवाय दफ्तर के !'

'अच्छा, कोस बाद मे लीजिएगा, पहले यह तो बताइए, बैठे कैसे ?'

'इतना भी नही मालूम ? पूरे कवि हैं।' अमिता चहकी, 'आप बच्चों को लेकर पीछे बैठिए, वीणा मेरे साथ बैठेगी।'

अशोक और कविता पीछे सीट पर बैठ गए। सजय बोल उठा . 'आटी, हम तो आपके पास बैठेंगे।'

'अच्छा भई, तुम भी यहीं बैठो ! कुछ-न-कुछ असर तो होगा ही अपने डैडी का !'

ानो तैर रहे हैं। ढलते सूरज की किरणें
ले काच के एक कोने से आकर अमिता
सके केश हल्की हवा मे लहरा रहे हैं।
मुस्कराहट मे जमे हैं, और संजय को
खा है।
क को।
से कैसा कष्ट हो रहा था—निर्जन,
ो ने उसे कैसा बेहाल कर दिया था।
ता का सानिध्य उसे कैसे मीठे

हैं। लोग आ-जा रहे हैं कर्मरत लोग,
लिए बड़े बाबू!
का परिचित है! जहां उसने टूटे हुए
ल दिया था।
जरूर नगर का भी अपना एक
—यह परिवेश इसमे कुछ भी अनोखा
नी वि ता है। मैं इसे कभी
चाहे उनका वर्णन न कर सकू।
?' अमिता से मौन तोड़ा 'क्या

अशोक ने किंचित् हंसकर उत्तर दिया।
के बराबर बड़ी अफसर तो नहीं हू,
है। आपकी सीटें रिजर्व हो चुकी है,

। नहीं तो रात की यात्रा में बच्चे

इनके मुंह से एक हल्का-सा 'थैंक्स'

तो कार रोकिएगा।' अशोक बोला।

'क्यों ?' बीणा ने अचरज से पूछा।

'भई, थैंक्स का जाप करूंगा, ऐसे कैसे काम चलेगा।' अशोक ने हंस कर कहा।

सब कहकहा लगाने लगे, यहां तक कि कविता भी हंसी।

अशोक ने फिर स्वर बदलकर कहा : 'और कुछ हुक्म, अमिता जी !'

'क्या जी-जी, आप-आप लगा रखी है ! सीधी तरह क्यों नहीं बात करते ?'

फिर सब हंस पड़े।

अशोक का मन खिला जा रहा है। कालेज छोड़ने के बाद आज पहली बार उसे बरसों बाद यह वाक्य सुनने को मिला है। अमिता आज भी वही है, वैसी ही है, कहीं कुछ नहीं बदला और मैं समझे था···

'मैं क्या समझा था ?'

समझने का अवसर ही कहां आया ?

और पीछे की गद्दी पर सिर टेककर अशोक ने आंखें बन्द कर ली।

ऐसी ही शाम थी वह, अशोक ने याद किया, जब वह बीणा से मिलने बनारस गया था।

बीणा यूनिवर्सिटी में पढ़ती थी।

यूनीवर्सिटी-कम्पाउण्ड की सूनी सड़क पर वृक्षों के नीचे छाया का खेल देखते वे टहल रहे थे कि एक बंगले के गेट से अमिता निकली।

अमिता ! यहां बनारस में !!

वह एक पल ठिठक गया, पहचाने या न पहचाने ?

और तभी अमिता बढ़ी थी : 'अरे भाई साहब, आप यहां !'

और एक 'भाई साहब' ने सहज कर दिया था।

परिचय लिए-दिए गए।

अमिता ने कहा : 'मेरे फादर-इन-ला रहते हैं यहां।' और दूसरे दिन सुबह का निमंत्रण देते हुए कहा : 'डाक्टर मुखर्जी से मिलाऊंगी।'

और वे दोनों गए थे। खूब आवभगत हुई।

अशोक को याद है, डॉक्टर मुखर्जी से मिलकर उसे बड़ी गहरी तृप्ति मिली थी। साइंस के इतने ऊंचे विद्वान और देखने में ऐसे सरल, ऐसे

भोले, बिलकुल बच्चे-से। और बातें कितने धीमे-धीमे करते थे।

और अशोक को याद आया : 'अमिता ने कैसे भारी-भारी गहने पहन रखे थे, कितना मोटा काजल लगा रखा था, मानो सारी डिबिया ही पोंछ ली हो ? वीणा ने टोका भी था तो उसने कहा था : 'क्या करूं, सास हठ करती हैं !'

'ठीक है, जो इन्सिस्ट करे उसी को मानो, अशोक ने तब मन-ही-मन कहा था और उसके मन में कहीं-न-कहीं कसक के स्पर्श से मिला हुआ एक व्यंग्य-भाव था !

क्यों ?

और जब खाने से पहले वह बाथरूम की ओर जा रहा था तो कमरे के एक कोने में गुमसुम] उदास बनी अमिता किस सोच में डूबी थी कि उससे आंखें मिलते ही चिहुककर भाग गई।

अशोक इससे क्या समझे ?

और फौरन एक और चित्र अशोक की आखों मे आ गया। अमिता के साथ जुड़े हुए चित्र है ही कितने ? इस अमिता के साथ जिसे वह समझना चाह रहा है।

वह स्टेशन पर गया था वीणा को रिसीव करने—वीणा बनारस से आ रही थी छुट्टियों में।

लेडीज कम्पार्टमेन्ट के सामने जाकर ज्यों ही खड़ा हुआ कि खिड़की पर दिखाई पड़ी अमिता !

सामने प्लेटफार्म की रोशनी मे उसकी आखें चमक रही थीं।

'अरे आप !'

'क्यों, क्या मैं ट्रेन में नहीं बैठ सकती ?'

'मैं अभी आया। जरा वीणा को ढूढ लू।'

'घबराइए नहीं, वीणा यहीं हैं। यह लीजिए, वह उतरी।'

और उसी कम्पार्टमेन्ट मे से उतरकर वीणा उन तक बढ़ आई।

'यह क्या जादू है ?' अशोक ने हंसकर पूछा था।

और पता चला था कि दोनो ने बनारस से साथ यात्रा की थी।

अमिता को दिल्ली जाना है, और वहा से विदेश। ससुराल से होकर यह अरुण – अपने बेटे – को मा के पास छोड़ने जा रही है।

'कहा है, अरुण, बुलाइए!' अशोक ने कहा था।

'सो रहा है। अभी-अभी सोया है।'

'जगा दीजिए ज़रा!'

'क्या कीजिएगा?'

'देखूगा।'

'और?'

'और आशीर्वाद दूगा—बडा होकर कवि बने!'

''तब तो सोने ही दीजिए।'

'क्यों?'

'अरे, एक ही कवि क्या कम है एक जिन्दगी के लिए?'

अशोक हस पडा था।

पर समझ मे यह भी नही आया था।

अशोक की समझ में कुछ नही आ रहा था, कभी नही आया है।

वह जानता है उसके मन मे त्रास है—जानता है क्योंकि उसे भोगता रहा है। जब भी ध्यान आता है तो उसमे डूब जाता है कि छटपटाने लगता है, जैसे कल रात!

उसके मन मे मिठास भी है, क्योंकि अभी के इन पलो पर वह कैसे अविश्वास करे!

पर क्या है यह त्रास? और, क्यो है यह मिठास?

नहीं, यह उसकी समझ से परे है!

अशोक ने आखें खोल दी। प्रयत्न करके उसने सामने देखना शुरू किया। दृष्टि सामने सडक के दृश्य-पट पर थी, पर बीच-बीच मे अमिता की देह भी झलक जाती थी—जो बीणा से हस-हसकर बातें कर रही थी।

नगर पीछे छूट गया था, मालूम एक नई कालोनी मे रहती है, न ही

उसके घर में प्रवेश करने के लिए। पहली बार— जीवन में पहली बार।
तभी डाक्टर मुकर्जी का ध्यान आया, और वह मुस्कराया।

'मुकर्जी साहब घर पर ही हैं ?' उसने प्रश्न किया।

'अभी कहां लौटे हैं, हम लोगों के पहुंचने तक शायद आ जायें। आज तो टैक्सी से आएंगे।'

'क्यों, सोचने के पहले ही वह कह चुका था।'

'रोज तो कार से ही आते-जाते है। पर आज तो कार आपकी सेवा मे है।'

'वाह, यह एक ही रही। हम लोग टैक्सी मे आ जाते। आपने नाहक परेशान किया उन्हे !'

'ऐसे ही सीधे है न जो आ जाते। मैने तो मुकर्जी साहब से साफ कह दिया, उनका कोई भरोसा नही, मैं खुद लेकर आऊगी !'

'देखता हू, मेरे बारे मे आपको बहुत-सी गलतफहमिया है।'

अशोक ने कुछ रीझे स्वर मे कहा।

'चलिए, रहने भी दी दीजिए, जैसे मैं जानती न होऊ ! मुझे तो वीणा पर तरस आता है, बेचारी कैसे सम्भालती होगी !'

'तग तो सचमुच ये बहुत करते है।' शह पाकर वीणा ने कहा, पर उसके स्वर का कृतार्थ भाव छुपा न रह सका।

'और क्या ?' अमिता ने टीप का बन्द जोड़ा: 'ये डिज़र्व थोडे ही करते थे। इनकी किस्मत है जो तुम इन्हे मिलीं।'

'जिसे देखिए वही वीणा का गुन गाता है !' अशोक ने प्रसन्न आश्चर्य से कहा, 'यह कोई नही देखता कि अगर मैं मेहनत न करता तो यह क्या हो पाती ?'

'अच्छा जी !' वीणा ने प्रतिवाद किया, 'आपने क्या किया है भला ! जानती हो अमिता, कभी ज़रा भी मदद की हो तो, सारी गृहस्थी का काम और ऊपर पढाई—बाबा रे !'

वीणा ने कमर टूटने का ऐसा अभिनय किया कि सब हंस पड़े।

'चलो खैर, माफ किया।' अमिता ने मुस्कराते हुए कहा: 'कवियों के

सौ खून माफ होते हैं। पर हजरत, यह बताइए कि इधर आपने कोई कविता क्यों नहीं लिखी ?'

'सो तो ये बराबर लिखते रहते है।' वीणा ने सफाई दी।

'तो क्या छपाना बन्द कर दिया ?'

'नहीं तो, अभी दो मास पहले ही नया संग्रह छपाया था !'

'मेरी प्रति कहा है !' अमिता के स्वर मे बनावटी डाट थी।

'माफ करना अमिता, भूल गया भेजना !'

'झूठ, बिलकुल झूठ ! मैं नही मानती !'

'असल मे बात यह है अमिता, इधर मैं जिस ढग की कविताएं लिखने लगा हू, वे शायद तुम्हे पसन्द न आए। तुम्हे मालूम है, आजकल नई कविता का युग है।'

'यह नई कविता क्या बला है ?' अमिता ने वीणा से पूछा।

'अरे, कुछ नही,' वीणा बोली : 'अब कवियो मे साधना करने का धीरज तो रहा नही। न तुक, न छन्द—बस जो मन मे आया घसीट दिया—हो गई नई कविता। उतावली मे और हो भी क्या सकता है ?'

'सो तो ये हमेशा के उतावले है।' अमिता ने आखे चमकाकर कहा।

अमिता ने कार धीमी की, दाहिनी ओर की गली मे मोडते हुए कहा : 'लो भई, वीणा, अपना गरीबखाना आ गया !'

पोर्च मे कार पहुंच रही थी कि अशोक बोला . 'मुझे तो यह महल लग रहा है।'

'अतिशयोक्ति तो कवियों का गुण है।' अमिता हसी, 'पर औरो को उससे उलझन ही होती है !'

सब लोग उतरकर अन्दर की ओर बढे। बरामदे के पीछे एक छाया-सी दिख रही थी। अमिता ने पूछा 'साहब आए ?'

तभी एक छोटा-सा प्यारा-सा काला कुत्ता सजय के पैरो के पास दुम हिलाने लगा। सजय कुछ पीछे हुआ।

ड्राइग रूम खास बड़ा न था। पर एक-एक चीज करीने से रखी थी। सादगी और सुरुचि से अशोक बड़ा प्रभावित हुआ।

संजय और कविता एक सोफे पर बैठ गए, अशोक और वीणा अलग-अलग कुर्सियों पर।

'अभी आती हूं।' कहकर अमिता भीतर गई।

दो मिनट बाद आकर बोली : 'मुकर्जी साहब आ चुके हैं। मुंह-हाथ धो करके अभी आते हैं।' फिर वीणा की ओर मुस्कराती हुई, 'आओ वीणा, तुम्हें घर दिखाए।'

अशोक असाधारण रूप से सचेत है! वह पंचेन्द्रियों से इस परिवेश को पी रहा है जिसमे अमिता का गृहिणी रूप—एक ऐसा रूप जिससे उसका कोई परिचय नही है—बसा हुआ है। उसके मन की ललक धीरे-धीरे नसों मे फैल रही है।

लगता है, वह कांप रहा है।

वह भावाविष्ट था। इसका पता उसे तब चला जब मुकर्जी साहब मन्द मुस्कराते धीर गति से आए और हाथ मिलाते हुए बोले 'कहिए अशोक बाबू! कैसे हैं?'

पता नही, इन मुकर्जी साहब मे क्या है, अशोक सोचता है, जो मुझे ऐसे पिघला देता है—मानो लहराती झील हो, जिसके किनारे मैं सूरज को डूबते देख रहा होऊं!

वह खिल उठा।

आनन-फानन मे मुकर्जी साहब ने कविता और सजय से परिचय कर लिया।

'तुम्हे क्या दे भाई! घर में खिलौने तो है नही! अच्छा ठहरो!'

वे तपाक से अन्दर गए।

दो मिनट बाद दो मोटी-मोटी सचित्र पुस्तकें लाए, बोले : 'लो, इन्हें देखो। कितने सुन्दर-सुन्दर चित्र हैं।

फिर अशोक से बोले : 'देखिए न अशोक बाबू, कितनी बढ़िया किताबें हैं। बच्चों को विज्ञान की शिक्षा देना तो ये अमरीका वाले ही जानते हैं। न जाने हमारे यहा ऐसी पुस्तकें कब छपेंगी।'

अशोक ने कौतूहल से उठकर पास जाकर देखा—पुस्तकें सचमुच

सौ खून माफ होते हैं। पर हज़रत, यह बताइए कि इधर आपने कोई कविता क्यों नहीं लिखी ?'

'सो तो ये बराबर लिखते रहते हैं।' वीणा ने सफाई दी।

'तो क्या छपाना बन्द कर दिया ?'

'नहीं तो, अभी दो मास पहले ही नया सग्रह छपाया था !'

'मेरी प्रति कहा है !' अमिता के स्वर मे बनावटी डाट थी।

'माफ करना अमिता, भूल गया भेजना !'

'झूठ, *बिलकुल झूठ ! मैं नहीं मानती !'*

'असल मे बात यह है अमिता, इधर मैं जिस ढग की कविताए लिखने लगा हूं, वे शायद तुम्हे पसन्द न आए। तुम्हे मालूम है, आजकल नई कविता का युग है।'

'यह नई कविता क्या बला है ?' अमिता ने वीणा से पूछा।

'अरे, कुछ नही,' वीणा बोली . 'अब कवियो मे साधना करने का धीरज तो रहा नही। न तुक, न छन्द—बस जो मन मे आया घसीट दिया—हो गई नई कविता। उतावली मे और हो भी क्या सकता है ?'

'सो तो ये हमेशा के उतावले हैं।' अमिता ने आखें चमकाकर कहा।

अमिता ने कार धीमी की, दाहिनी ओर की गली मे मोडते हुए कहा : 'लो भई, वीणा, अपना गरीबखाना आ गया !'

पोर्च मे कार पहुच रही थी कि अशोक बोला 'मुझे तो यह महल लग रहा है।'

'अतिशयोक्ति तो कवियों का गुण है।' अमिता हसी, 'पर औरो को उससे उलझन ही होती है !'

सब लोग उतरकर अन्दर की ओर बढ़े। बरामदे के पीछे एक छाया-सी दिख रही थी। अमिता ने पूछा : 'साहब आए ?'

तभी एक छोटा-सा प्यारा-सा काला कुत्ता सजय के पैरों के पास दुम हिलाने लगा। सजय कुछ पीछे हुआ।

ड्राइंग रूम खास बड़ा न था। पर एक-एक चीज करीने से रखी थी। सादगी और सुरुचि से अशोक बड़ा प्रभावित हुआ।

संजय और कविता एक सोफे पर बैठ गए, अशोक और वीणा अलग-अलग कुर्सियों पर।

'अभी आती हूं।' कहकर अमिता भीतर गई।

दो मिनट बाद आकर बोली : 'मुकर्जी साहब आ चुके हैं। मुंह-हाथ धो करके अभी आते हैं।' फिर वीणा की ओर मुस्कराती हुई, 'आओ वीणा, तुम्हें घर दिखाएं।'

अशोक असाधारण रूप से सचेत है! वह पंचेन्द्रियों से इस परिवेश को पी रहा है जिसमें अमिता का गृहिणी रूप—एक ऐसा रूप जिससे उसका कोई परिचय नहीं है—बसा हुआ है। उसके मन की ललक धीरे-धीरे नसों में फैल रही है।

लगता है, वह कांप रहा है।

वह भावाविष्ट था। इसका पता उसे तब चला जब मुकर्जी साहब मन्द मुस्कराते धीर गति से आए और हाथ मिलाते हुए बोले : 'कहिए अशोक बाबू! कैसे हैं?'

पता नहीं, इन मुकर्जी साहब में क्या है, अशोक सोचता है, जो मुझे ऐसे पिघला देता है—मानो लहराती झील हो, जिसके किनारे मैं सूरज को डूबते देख रहा होऊं!

वह खिल उठा।

आनन-फानन में मुकर्जी साहब ने कविता और संजय से परिचय कर लिया।

'तुम्हें क्या दें भाई! घर में खिलौने तो हैं नहीं! अच्छा ठहरो!'

वे तपाक से अन्दर गए।

दो मिनट बाद दो मोटी-मोटी सचित्र पुस्तकें लाए, बोले : 'लो, इन्हें देखो। कितने सुन्दर-सुन्दर चित्र हैं।

फिर अशोक से बोले : 'देखिए न अशोक बाबू, कितनी बढ़ियां किताबें हैं। बच्चों को विज्ञान की शिक्षा देना तो ये अमरीका वाले ही जानते हैं। न जाने हमारे यहां ऐसी पुस्तकें कब छपेंगी।'

अशोक ने कौतूहल से उठकर पास जाकर देखा—पुस्तकें सचमुच

अनोखी थी।

'आप अपने साथ लाए होगे?'

'जी हा ! कुछ ही ला पाया। जल्दी मे था। यहा के कई .पब्लिशरों को दिखाई, सब कहते है—हिन्दुस्तान मे नही चलेगी। भला बताइए, होड़ हम रूस और अमेरिका से करते है, और दम इतना भी नही कि ज़रूरी किताबें भी छाप सकें। सच, कभी-कभी तो हंसी आती है।'

तभी वीणा के हाथ से हाथ बाधे अमिता आकर बोली : 'चलिए, लूचिया तैयार हैं। आपका प्रिय पकवान!'

'मैं तो सिर्फ चाय लूगा, अभी भूख नही है।' अशोक बोला।

'और सुनिए! दोपहर भर खाना बनाते-बनाते मैं तो थक गई और इन्हे भूख ही नही है। अरे भई, डिनर के समय पर तो आप ट्रेन में होंगे, इसलिए चाय के साथ ही कुछ खाना भी है—जिसे कहते है 'हाई टी' समझे कुछ।'

'किसकी हिम्मत है जो न समझे!' अशोक ने अन्दर जाते-जाते कहा।

सब जाकर डाईनिंग टेबिल पर बैठ गए।

'अरुण कहा है?' अशोक ने पूछा।

'यह लीजिए,' अमिता बोली, 'आप क्या समझते है अब भी वह छोटा-सा बच्चा है जो सो रहा होगा। वह कालेज मे है।'

'कालेज मे?' अशोक बोला।

'हां, इंजीनियरिंग कालेज मे।' मुकर्जी साहब ने समझाया, 'खड़गपुर, वही रहता है।'

'अच्छा, तो यह बात है। *आप अरुण को इंजीनियर बना रही है?'*

'और क्या, कवि बनाकर उसको खो बैठू।'

सब हंस पड़े।

अशोक दो हो गया है।

एक अशोक जोर-जोर से हंस रहा है, बातें कर रहा [illegible] रहा है और मुकर्जी साहब को अपने दफ्तर के विवरण दे र[illegible]

और दूसरा अशोक बीस साल पहले के लोक [illegible]

में खड़ा अमिता से बातें कर रहा है। अमिता कह रही है : 'सच, लड़कियों को तो शादी से पहले ही मर जाना चाहिए।'

झन्न-झन्न-झन्न !

संजय ने अपनी कटोरी गिरा दी है। वह उसे पकड़ने उठ रहा है।

'रहने दो, रहने दो, मैं और देती हूं।' अमिता उसे बैठाकर अपने हाथ से खिलाने लग जाती है।

अचानक यह कौन याद आया है ?

मीना !

हां, मीना ! तब इतनी ही बड़ी थी, कितनी चचल ! कितनी प्यारी !

'मीना कहा है आजकल ?' अशोक को आश्चर्य है कि उसका गला भर्रा क्यों रहा है ?

अमिता चुपचाप डाक्टर मुकर्जी की ओर देखती है।

अच्छा, इसमें भी कोई रहस्य है क्या ?

मुकर्जी साहब बोले : 'रांची में है। शादी हो गई है। बहुत दिन हो गए।'

अशोक को कहीं कुछ खटक रहा है।

'क्वाइट हैप्पी ?' वह अंग्रेजी में पूछता है।

'होनी तो चाहिए, प्रेम-विवाह था।'

'क्या बताए, भाई साहब', अब अमिता बोली, 'बाबा को तो इतना दु:ख हुआ कि फिर चले ही गए !'

अशोक सिर झुकाकर सोचने लग गया।

और विमल—विमलेन्दु ?

उसने चाहा पूछे, पर फिर न जाने क्या सोचकर रह गया।

घण्टे भर बाद जब वे चलने के लिए बाहर पोर्च में आए तो अशोक ने देखा—रात घिर आई थी।

'तुम पहली बार हमारे घर आई हो वीणा।' अमिता ने कहा : 'क्या दें तुम्हें?'

उसने बड़ी बेचैनी से इधर-उधर देखा।

फिर बगल के लॉन में जाकर एक फूल चुन लाई।

वीणा के जूड़े में अपने हाथ से लगाती बोली : 'बहुत महकता है। नाम है गंधराज!'

हिन्दुस्तान प्रिन्टर्स, शिवाजी पार्क, - '६

'तुम पहली बार हमारे घर आई हो वीणा।' अमिता ने कहा : 'क्या दूँ तुम्हें?'

उसने बड़ी बेचैनी से इधर-उधर देखा।

फिर बगल के लॉन में जाकर एक फूल चुन लाई।

वीणा के जूड़े में अपने हाथ से लगाती बोली : 'बहुत महकता है। नाम है गंधराज!'

हिन्दुस्तान प्रिन्टर्स, शिवाजी पार्क, शाहदरा दिल्ली-32। 48122